

३

प्रान्तीयता  
और आतंकवाद



## पूर्वांचल का ज्वालामुखी

पूर्वांचल में ज्वालामुखी सुलग रहा है। परन्तु पंजाब के आतंकवादियों द्वारा निर्दोष लोगों की निरन्तर हत्याओं के कारण देश की जनता के मन पर पंजाब ही इतना हावी रहता है कि पूर्वांचल के ज्वालामुखी की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। इस ज्वालामुखी के लावे को नियन्त्रण में रखने के लिये ही श्रीमती इन्दिरा गांधी ने असम का विभाजन करके उसे नागालैण्ड, मेघालय, अरुणाचल, मिज़ोरम और मणिपुर में विभाजित कर दिया था। दूरदृष्टि से सोचा जाय तो बांग्लादेश का निर्माण भी उसी ज्वालामुखी को नियन्त्रित करने का एक पहलू था। परन्तु उसके बाद भी वह ज्वालामुखी शान्त हो गया है, यह नहीं कहा जा सकता। असम छात्र आन्दोलन जो उग्ररूप धारण करता जा रहा था, उसको काबू करने के लिये राजीव गांधी को अन्त में समझौता करना पड़ा। परन्तु अब जिस तरह पंजाब समझौता खटाई में पड़ गया है और उसके छिद्र सामने आ रहे हैं, उसी तरह असम समझौता भी कार्यान्वित होने की प्रतीक्षा कर रहा है।

जून १९८० में त्रिपुरा में जिस नर संहार में तीन हजार लोग मारे गये थे उसकी दहशतनाक याद अभी तक लोगों के दिमाग से उतरी नहीं थी कि अब ट्राइबल नेशनल वालन्टियर्स (टीएनवी) के छापामारों ने वैसी ही खौफनाक स्थिति फिर पैदा कर दी। छापामार चुन-चुनकर बंगालियों की हत्या कर रहे हैं। सन् १९८६ में इन हत्याओं की संख्या १११ तक पहुंच चुकी है। टीएनवी के इन छापामारों ने बंगालियों और आदिवासियों में एक ऐसी दरार पैदा कर दी है कि उसे भर पाना आसान नहीं होगा। जिस तरह पंजाब के आतंकवादी हिन्दुओं की हत्या करके उनको पंजाब से निकालना चाहते हैं और उसकी प्रतिक्रिया—स्वरूप कल्पना करते हैं कि सिख बाहर से भाग कर पंजाब आ जायेंगे, कुछ वैसी ही योजना इन टीएनवी के छापामारों की भी है। वे चाहते हैं कि बंगाली वहां से निकल जाएं तो वे अपने अलग आदिवासी राज्य की मांग करें।

त्रिपुरा की माकपा सरकार अभी तक इन छापामारों के साथ सख्ती बरतने में ठीक वैसे ही हिचकिचाती रही है जैसे कि पंजाब की बरनाला सरकार।

आतंकवादियों के विरुद्ध सख्ती बरतने में बरनाला सरकार को अपना बचा खुचा राजनैतिक जन-आधार भी समाप्त होने का अंदेशा है। वैसे ही त्रिपुरा की नृपेन चक्रवर्ती सरकार को भी चुनावों के समय उनकी पार्टी को कई सीटें इसी टीएनवी के सहयोग से प्राप्त हुई थीं। कुछ लोग तो टीएनवी को वाममोर्चा का एक हिस्सा ही मानते रहे हैं। केन्द्रीय सरकार के गृहमंत्री राज्य सरकार पर आरोप लगाते रहे हैं कि वह टीएनवी के साथ नरमी बरत रही है। राज्य की वामपंथी सरकार ने आदिवासियों को विकास कार्यों में प्रमुखता देने और उनके एक स्वायत्तशासी जिला-परिषद् की स्थापना करने का भी निश्चय किया, किन्तु इससे सन्तुष्ट होने के बजाय टीएनवी के छापामारों ने इसे अपनी विजय समझ कर अपनी गतिविधियाँ और तेज़ कर दीं। जिस प्रकार पंजाब में मंड के इलाके से आतंकवादियों को अपनी कार्यवाही जारी रखने में भौगोलिक सुविधा प्राप्त होती है, टीएनवी के छापामारों को वैसी ही सुविधा त्रिपुरा के दक्षिण भाग में स्थित अमरपुर के पास गांधारी रोड के निकटवर्ती भौगोलिक प्रदेश से प्राप्त होती है। अमरपुर के सबडिविज़न में ७५ प्रतिशत आबादी आदिवासियों की हैं जबकि कस्बे में बंगालियों की आबादी अधिक है। इसलिये अगर कस्बे में किसी आदिवासी की हत्या होती है तो निकटवर्ती प्रदेशों के आदिवासियों को कस्बे पर हमला करने का तुरन्त बहाना मिल जाता है। जून १९८० के बाद से अब तक इस प्रदेश में ४५६ राजनैतिक हत्याएं हो चुकी हैं। अन्ततः अब केन्द्रीय सरकार ने उक्त प्रदेश को अशान्त क्षेत्र घोषित करके टीएनवी को गैर कानूनी करार दिया है और इलाके का नियन्त्रण सीआरपीएफ के जवानों को सौंप दिया है।

परन्तु पूर्वांचल के जिस प्रसुप्त ज्वालामुखी की ओर हम संकेत करना चाहते हैं वह इससे भिन्न है। वह ज्वालामुखी बांग्लादेश के निर्माण के बाद ही उभर कर सामने आया है। परन्तु उसकी ओर देशवासियों का बहुत कम ध्यान है। दक्षिणी त्रिपुरा के साथ लगती बांग्लादेश की सीमा से होकर ३५ हजार चकमा त्रिपुरा पहुंच चुके हैं और २० हजार चकमा मिज़ोरम में प्रविष्ट हो चुके हैं। इन हजारों चकमा शरणार्थियों को न त्रिपुरा रखने को तैयार है, न ही मिज़ोरम। अन्ततः भारत सरकार ने बांग्लादेश सरकार को इन शरणार्थियों को वापस लेने के लिये मनाया। बांग्लादेश की सरकार इनमें से २४ हजार शरणार्थियों को वापस लेने को भी तैयार हो गई। परन्तु इन शरणार्थियों ने बांग्लादेश वापस जाने से इन्कार कर दिया। इसमें कुछ लोगों को चकमाओं की नासमझी और हठधर्मी लग सकती है परन्तु वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। चकमाओं को विश्वास नहीं है कि बांग्लादेश में उनका जानमाल सुरक्षित रह पायेगा। उनका यह भय बनावटी नहीं है। इसमें पूरी सच्चाई है। जान बूझकर कोई भी गैत के मुंह में जाने को तैयार नहीं होगा।

चकमा अधिकांश बौद्ध-धर्मावलम्बी हैं। मिज़ो और नगाओं की तरह ईसाई पादरी इनमें सफलता प्राप्त नहीं कर सके। ये चकमा स्वभाव से बड़े सरल और निश्चल प्रकृति के हैं और रंग-रूप की दृष्टि से सारे पूर्वांचल में सबसे अधिक सुन्दर कहे जा सकते हैं। इनमें से जो लोग पढ़ लिख गये वे बेशक शहरों में आ गये, परन्तु अधिकांश लोग अपने देहातों में ही बने रहे। परम्परा से ये बहादुर लोग हैं। चटगांव के जिस पहाड़ी प्रदेश में और वन प्रान्तों में ये निवास करते थे, वह हिल ट्रेक्ट्स नाम से अंग्रेजों के ज़माने में एक अलग जिला ही था। उस ज़माने में त्रिपुरा एक छोटी सी रियासत थी। उसी तरह इन चकमाओं का भी अपना अलग एक राज्य था। महाराज भुवनेश चन्द्र इनके शासक थे। अभी तक बांग्लादेश के रंग-माटी इलाके में महाराजा का किला और महल बना हुआ है। अंग्रेजों ने छलबल से अन्य रियासतों को हड़प लिया, वैसे ही चकमाओं के राज्य को भी। इन चकमाओं ने अपने आपको हिन्दुओं से कभी अलग नहीं समझा और इनकी भारत के प्रति निष्ठा में भी कभी अन्तर नहीं पड़ा। पाकिस्तान के निर्माण के समय उनका विश्वास था कि पूरा चटगांव नहीं तो कम से कम इनका पहाड़ी प्रदेश तो अवश्य भारत में शामिल किया जायेगा, क्योंकि वहां मुसलमानों की आबादी सर्वथा नगण्य थी। परन्तु रैड क्लिफ कमिशन ने इनके साथ अन्याय करके इनके प्रदेश को पूर्वी पाकिस्तान में शामिल कर दिया। तब भी १५ अगस्त १९४७ को ये चकमा तिरंगा ध्वज लहराने से और भारत माता की जय बोलने से बाज़ नहीं आये।

देश-विभाजन के बाद से ही उनके कष्टों की परम्परा प्रारम्भ हो गई। बांग्लादेश की राजनीति में उनका कोई दखल था ही नहीं। वैसे भी सरल धार्मिक स्वभाव के आदी ये लोग अपनी अभावग्रस्त जिन्दगी में भी सन्तुष्ट रहने वाले थे। परन्तु बांग्लादेश की सरकार मन ही मन इनको पंचमांगी समझती रही क्योंकि इनके मन में से भारत के प्रति अनुराग को वह नहीं निकाल सकी।

जब रंगमाटी में विशाल कृत्रिम झील बनाई गई तब इन चकमाओं की ज़मीनें उस पानी में डूब गईं। चकमा उजड़ गये। इनका पुनर्वास करने के लिये इनको और ज़मीनें दी गईं और दिखाने के लिये थोड़ा बहुत पुनर्वास किया भी गया। परन्तु जातीय दृष्टि से इनको समाप्त करने के लिये बांग्लादेश की सरकार ने इनकी ज़मीनों पर बंगाली मुसलमानों को बसाना प्रारम्भ कर दिया। इन बंगाली मुसलमानों ने इनको डराना, इनको अपने घरों से खदेड़ना प्रारम्भ किया और साथ ही बड़े पैमाने पर इनका धर्मान्तरण किया जाने लगा। बांग्लादेश की सरकार की इसमें पूरी शह थी और वहां की सेना का पूरा सहयोग था। सरकार इनका जातिनाश करने के लिये बंगाली मुसलमानों को चकमा लड़कियों से शादी करने के लिये प्रोत्साहित करती थी जिससे उनकी सन्तान नाक-नक्श की दृष्टि से बंगाली

साँचे में ढल जाये। जब बांग्लादेश के सेना के अफसरों की निगरानी में जोर-जबर्दस्ती चलने लगी तो इन चकमाओं के पास बांग्लादेश छोड़ कर भारत आने के सिवाय कोई और चारा न था। उनको अपनी भारत-भक्ति की सज़ा भोगनी पड़ रही थी।

बांग्लादेश के जिन राजनेताओं ने पाकिस्तानी अत्याचारों से उबरने और इस्ाफ पाने के लिये इन्दिरा गांधी के सहयोग से अपने स्वतंत्र देश का निर्माण किया था, उन्हीं राजनेताओं ने इन चकमाओं के साथ कभी इस्ाफ नहीं किया। और तो और, बंगबंधु शेख मुजिबुर्रहमान ने इन चकमाओं को धमकी दी थी कि तुम्हारा बंगालीकरण करके हम तुमको समाप्त कर देंगे। तब से बांग्लादेश की जो भी सरकार आती गई वही इन चकमाओं के बंगालीकरण और इस्लामीकरण पर लगातार जोर देती रही। चकमाओं ने, जब उनकी पुकार सुनने वाला और कोई नहीं बचा, तब मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिये अम्टरडैम में अन्तर्राष्ट्रीय मानवीय अधिकार संरक्षण समिति (एमनेस्टी) के पास गुहार की और ऐसे खास २७८ केस उस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के सामने पेश किये जिनमें चकमाओं के साथ ज़्यादती और अमानवीय व्यवहार किया गया था। उस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के पास सिवाय सहानुभूति के किसी प्रकार का कोई राजनैतिक अधिकार तो था नहीं। आखिर इन अत्याचारों के बढ़ जाने पर चकमाओं को भारत की शरण लेनी पड़ी।

परन्तु भिक्षा-पात्र हाथ में लेकर घरबार छोड़कर भाग जाना कोई युवा कैसे बर्दाश्त कर सकता है? तब कुछ युवा चकमाओं ने मिलकर एक शान्ति-वाहिनी का निर्माण किया जो पर्वतीय चट्ट ग्राम जनसंघर्ष समिति की छापामार सेना कही जा सकती है। इस शान्ति-वाहिनी ने कई स्थानों पर बांग्लादेश के सैनिकों को चुनौती दी और उनकी हत्याएं भी कीं। तब बांग्लादेश की सरकार और अधिक अत्याचार करने पर उतर आयी। "शान्ति-वाहिनी" के लोगों का कहना है कि अरब देशों के पैट्रो डालर की मदद से चकमाओं के इस्लामीकरण की प्रक्रिया जोरों से जारी है। मुसलमानों के साथ विवाह करने के लिए चकमा कन्याओं को बाधित किया जाता है और धर्म परिवर्तन करने वाले चकमाओं को उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता दी जाती है। बलात्कार की शिकायतें अनसुनी कर दी जाती हैं। चकमाओं की जन समिति का कहना है कि जब से बांग्लादेश की सरकार ने सन् १९७२ में अपने संविधान में यह संशोधन किया है कि चटगांव के इस पहाड़ी प्रदेश का अलग क्षेत्र का दर्जा समाप्त किया जाता है और आगे से इस प्रदेश के जितने आदिवासी हैं, उन सबको बंगाली मुस्लिम माना जायेगा, तब से बांग्लादेश की सरकार पर हमारा विश्वास हट गया है। हमको अब भी भारत सरकार की अक्लमंदी पर विश्वास है।

इसी पृष्ठभूमि के कारण चकमा वापिस बांग्लादेश जाने को तैयार नहीं हैं। शान्त स्वभाव के ये चकमा कब तक शान्त बने रहेंगे, यह नहीं कहा जा सकता। यदि किसी दिन ये सबके-सब बांग्लादेश जाने से इन्कार कर दें और इसी मुद्दे पर विद्रोह पर उतर आएँ, तो ज्वालामुखी का लावा फूट कर बहने में देर नहीं लगेगी। परिस्थितियों ने चकमाओं के भविष्य पर प्रश्न-चिह्न अवश्य लगा दिया है।

१ फरवरी १९८७



“साधुओं के विद्रोह की बात सुनने में विचित्र—सी लग सकती है। पर सम्राट अकबर के समय से ही सशस्त्र साधुओं के ऐसे गिरोहों की उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं, जो राजकीय खजानों को लूट लेते थे। इन संन्यासियों में हिन्दू भी थे, मुसलमान भी।... एक बार सशस्त्र संन्यासियों के ऐसे ही एक दल ने किसी वृद्धा साध्वी के नेतृत्व में औरंगजेब की शाही सेना से भी टक्कर ली थी, जिसमें शाही सेना को मुंह की खानी पड़ी थी।...”

“इन संन्यासियों का कहीं निश्चित स्थान नहीं था। ये उत्तर प्रदेश से लेकर बंगाल तक घूमते थे। अंग्रेजों के आने के पश्चात् पूर्वी बंगाल इनका विशेष क्रियाक्षेत्र बन गया। हिन्दू और मुस्लिम जनता पर इनका काफी प्रभाव था और जनता तथा बड़े-बड़े ज़मींदार रुपया-पैसा, राशन-पानी तथा हरबे-हथियार से इनकी छिप-छिप कर सहायता करते थे।”

“सन् १७६३ में इन संन्यासियों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ढाका वाली कोठी पर कब्ज़ा कर लिया। अंग्रेज ढाका छोड़कर भाग गये। दीनाजपुर, जलपाईगुड़ी, मैमनसिंह, रंगपुर और राजशाही में इन संन्यासियों की कम्पनी की सेना से अनेक बार मुठभेड़ हुई।... कम्पनी का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया था। इनका अपना गुप्तचर-विभाग भी रहता था, जो प्रतिपक्षी की समस्त गतिविधियों की जानकारी देता रहता था।... सन् १७६४ के आस-पास संन्यासियों का यह विद्रोह समाप्त हो पाया।”

—‘बांग्ला देश : स्वतन्त्रता के बाद’, पृष्ठ १५४-१५५

## लहूँ इंसानों का जायज़ है

बड़ी करामाती है अंगूर की बेटी (शराब)! जब तक यह बोतल में बंद रहती है, तब तक तो सती—साध्वी बनी रहती है, पर बोतल से बाहर निकलते ही सब छिनालों को मात कर देती है। पर अंगूर की बेटी की बात थोड़ा ठहर के, पहले उसके कुछ भाई—बन्धुओं की चर्चा करें।

अपने पत्रकार जीवन की एक घटना याद आती है। महाराष्ट्र और गुजरात के कारखानों के दौरे पर एक प्रैस-पार्टी गई थी, जिसमें दैनिक हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि के रूप में लेखक को भी सम्मिलित होने का अवसर मिला। पत्रकारों का दल जहाँ भी जाता उनके भोजन की व्यवस्था के लिये सामिष और निरामिष भोजन, दोनों प्रकार की व्यवस्था रहती। जिनको मांसाहार से परहेज़ नहीं था, वे सामिष व्यवस्था में चले जाते, और शेष पत्रकार निरामिष व्यवस्था में। अकाली पत्र के सम्पादक महोदय हमेशा सामिष व्यवस्था में ही शामिल हुआ करते थे। परन्तु एक रात वे अपने उन साथियों को छोड़कर हमारे साथ निरामिष व्यवस्था में शामिल हो गये। शायद वे गलती से इधर आ गये हों, यह सोचकर लेखक ने उनसे कहा— “सरदार जी आज आप इस घास—फूस वाली पार्टी में कैसे आ गये? आपको तो दूसरी ओर जाना चाहिये।” इस पर सरदार जी ने कहा— “आज मैं जान बूझकर इधर आया हूँ। आज जो कारखाना हमने देखा है, उसका मालिक मुसलमान है न! इसलिये पता नहीं, मांसाहारी भोजन में उसने कुछ गड़बड़ की हो।” मैं तुरन्त उनकी बात समझ नहीं पाया। मैं पूछ बैठा कि गड़बड़ी कैसी? तब उन्होंने कहा कि उसने कहीं हलाल मांस का प्रयोग न किया हो! उसी शंका से मैं उस ओर नहीं गया। तब एकदम मेरी समझ में बात आ गई कि सरदार जी सिख होने के कारण झटके वाला मांस तो खा सकते हैं, परन्तु हलाल वाला नहीं। सिख—बन्धु हलाल का मांस खाना पाप समझते हैं, जबकि झटके वाले मांस में उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। इसी प्रकार मुस्लिम—बन्धुओं को हलाल वाले मांस में आपत्ति नहीं होती, वे झटके वाला मांस खाना पाप समझते हैं। एक प्रगतिशील समझे जाने वाले पत्रकार के मुख से हलाल और झटके की यह पाप—बुद्धि की बात सुनकर उस संकीर्ण समझ पर आश्चर्य हुआ जो मांस खाने को बुरा नहीं



मानती परन्तु अपने मत के अनुसार हलाल या झटके का मांस खाने को बुरा मानती है।

जहां तक सिख-पंथ का सवाल है, दशमेश गुरु गोविन्दसिंह जी का आदेश है—

कुठा हुक्का चरस तम्बाकू, गांजा टोपी ताड़ी खाकू।  
इनकी ओर कभी न देखे, रहत बन्त जो सिख विसेखे।।

(रहतनामा देसासिंह)

—मेरे विशेष 'रहत' वाले जो सिख है वे मांस, चरस, तम्बाकू, गांजा, चिलम, ताड़ी, शराब आदि का सेवन नहीं करते। वे इन गन्दी वस्तुओं की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते?

इसके अलावा जन्मसाखी में लिखा है—

बकरा झटका बीच न करे, और मांस न लंगर बड़े।।

जो करे इबादत बन्दगी, उसनू मांस न पाक।

सभना अन्दर रम रह्या, हरदम साहिब आप।।

—लंगर या रसोईघर में बकरे का झटका न हो, न ही मांस अन्दर प्रवेश पा सके। जो ईश्वर की उपासना करता है, उसके लिये हर प्रकार का मांस अपवित्र है। क्योंकि प्राणी—मात्र में एक ही परमात्मा रम रहा है।

भांग माछली सुरा पानि, जो-जो प्राणी खाहिं।

तीरथ, बरत, नेम किये ते, समे रसातल जाहिं।।

(कबीर)

—जो लोग भांग शराब आदि नशा और मछली मांस आदि अभक्ष्य भोजन करते हैं, उनके तीर्थ, स्नान, व्रत और नियम सब व्यर्थ जाते हैं।

इस प्रकार केवल शराब ही नहीं बल्कि मांस, तम्बाकू, गांजा, चरस आदि सभी व्यसनों को बुरा बताया गया है। इन व्यसनों में कौन सा व्यसन अधिक बुरा है और कौन सा कम बुरा है, इस पर विवाद हो सकता है। जो इनमें से किसी एक व्यसन का शिकार है, वह अपने वाले व्यसन को कम बुरा, और अन्य लोगों द्वारा अपनाये जाने वाले व्यसनों को अधिक बुरा बता सकता है। सन्तोष की बात इतनी ही है कि इन व्यसनों का सेवन करने वाले भी इन व्यसनों को बुरा मानते हैं। परन्तु आदत से मजबूर कहकर अपने आपको सदा अक्षम्य समझ लेते हैं। इन व्यसनों की विशेषता यह है कि जितना—जितना इनका विरोध होता है, उतना ही उतना इनका अधिक विस्तार होता जाता है। संसार के सभी देशों की सरकारें इस प्रकार के व्यसनों की रोकथाम के लिये थोड़ा-बहुत प्रयत्न करती दिखाई देती हैं। परन्तु दिन पर दिन उनका प्रयोग बढ़ता ही जाता है। जब से सोवियत संघ

ने अत्यधिक मद्यपान के विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया है, तो उसका असर नागरिकों के जीवन पर दिखाई देने लगा है। अमेरिका में भी, जो मद्यपान के लिये बुरी तरह बदनाम है, जिन लोगों ने शराब पीना छोड़ दिया है, जहां उनका स्वास्थ्य सुधरा है, वहां अकाल मृत्यु में भी कमी आई है। व्यसनो की विशेषता यह है कि धर्मोपदेष्टा जनता को उनसे बचने का उपदेश देते रहते हैं। परन्तु दैनिक जीवन की समस्याओं से उलझने में व्यस्त आधुनिक युग के आदमी को इन व्यसनो के माध्यम से जीवन में क्षणिक राहत मिलती प्रतीत होती है।

तम्बाकू आदि का सेवन करने वाले लोगों ने अपने हमराहियों का विस्तार करने के लिये तरह-तरह की कहावतें और सूक्तियां गढ़ ली हैं। तमाम जनता उन सूक्तियों के कारण ही इन व्यसनो की ओर अनायास खिंचती चली जाती है।

हिन्दी की कहावत है— 'पीता न हुक्के की कली, उस मर्द से औरत भली' संस्कृत के भी किसी कवि ने एक सूक्ति निम्न प्रकार की गढ़ डाली है—

बिडौजा: यदा पृष्ठवान् पद्मयोनिं,

धरित्री-तले सारभूतम् किमस्ति।

चतुर्भिमुखै-रित्यवोचद् विरंची:

तम्बाकू: तम्बाकू: तम्बाकू: तम्बाकू:।।

—एक बार इन्द्र ने ब्रह्मा जी से पूछा कि पृथ्वी—तल पर सारभूत वस्तु क्या है तो ब्रह्मा जी अपने चारों मुखों से एक साथ बोले— "तम्बाकू, तम्बाकू, तम्बाकू, तम्बाकू।"

चरस पीने वाले साधु सन्तों की जमात में 'अगड्धत्ता, फूँक दे बम्बई—कलकत्ता' वाले मस्तमौला भी मिल जायेंगे। सिगरेट तो फैशन का अंग बन गई है। इसलिये पढ़े—लिखे प्रशिक्षित लोग भी खुले आम सिगरेट पीने में कोई दोष ही नहीं समझते।

अपना गम भुलाने के लिये सबसे अधिक समर्थन सुरा—पान का किया जाता है। यह सुरा—पान गरीब आदिवासियों से लेकर महानगरों के अमीरों तक बुरी तरह फैला हुआ है। गरीब और मजदूरों के लिये जहां वह लाचारी है, अमीरों के लिये वह 'स्टेटस सिम्बल' है। तथाकथित अभिजात—वर्गीय समाज में मद्यपान न करने वाले व्यक्ति को पोंगापंथी और दकियानूसी समझा जाता है। शराब के पीछे तथाकथित कल्चर की एक पूरी पृष्ठभूमि है, जिसमें उर्दू की शायरी का बहुत बड़ा हाथ है। अगर 'मय' और 'साकी' उर्दू की शायरी में से निकाल दिये जायें तो उर्दू में कितना क्या कुछ बचेगा? यह सोचने वाली बात है।

आदमी जो कुछ है और जिस स्थिति में है उसको भुलाने के लिये वह सुरापान करता है। इसलिये शायर ने कहा— "जर्रे से आफ़ताब होते हैं, जब हम मस्त—ए—शराब होते हैं।"

सभी व्यसनों का थोड़ा बहुत किसी प्रकार मनुष्य को अपना आपा भूलने में सहयोग रहता है, परन्तु जब इन व्यसनों की बढ़ौलत सरकार की आबकारी-संबंधी समृद्धि भी जुड़ जाती है, तो वह राजनैतिक रूप भी ग्रहण कर लेती है। 'अंगूर की बेटी' की जिस करामात का संकेत लेख के शुरू में किया है, क्या उसकी यह करामात कुछ कम है कि जिस पंजाब में इस समय शराब के ठेकों को जलाया जा रहा है और शराब बेचने वालों को मारा जा रहा है, उसी पंजाब में सबसे अधिक शराब पी जाती है? गुरु नानक ने कहा था—

**माढ़ा नशा शराब दा, उतर जाये परभात।**

**नाम-खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।।**

इस समय आतंकवादी जिस तरह शराब, तम्बाकू, पान, सिगरेट बेचने वाले लोगों को अंधाधुंध गोलियों का शिकार बना रहे हैं, क्या वे नाम-खुमारी की बढ़ौलत? इन्होंने स्वर्ण-मन्दिर को भी हिंसा और हत्या का अड़्डा बना दिया, उनका धर्म से, नाम खुमारी से क्या वास्ता। उनका तो यह लोगों से पैसे ऐंठने का और अपना उल्लू सीधा करने का हथियार है। उन्हें शराब पीने पर एतराज़ नहीं है, परन्तु शराब बेचने पर एतराज़ है। अगर शराब पीने पर एतराज़ होता तो शायद उनको अपने ही लोगों में उनकी संख्या सबसे अधिक मिलती। शराब से ही क्यों, उनको नाईयों पर भी आपत्ति है, और अब तो वे धोती, टोपी, साड़ी, जीन्स, पतलून और इसी प्रकार के अन्य पहनावों के विरुद्ध भी हुक्मनामे निकालने लगे हैं। धीरे-धीरे उनका यह तथाकथित धर्म प्रेम पगड़ी के रंग और दाढ़ी रखने के ढंग और कुर्ते की काट पर भी लागू होगा। और तब स्वयं सिख पंथ के अनुयायियों की समझ में आयेगा कि आतंकवादी जिस खालिस्तान की स्थापना करना चाहते हैं उसकी रूपरेखा क्या होगी?

उपरोक्त सारे व्यसन बुरे हैं, उनके विरुद्ध आक्रोश भी उचित हो सकता है। पर वह आक्रोश अहिंसात्मक होने के बजाय हिंसात्मक हो जाये तो वह किसी भी हालत में धर्म की कोटि में नहीं आ सकता। तब हर एक समझदार व्यक्ति यही कहेगा—

**लहू इन्सां का जायज़ है दुखतरे दाख नाजायज़।**

**बताओ कैसे लाये हम ईमां, ऐसे ईमां पर।।**

यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि यह दुखतरे दाख अर्थात् अंगूर की बेटी सचमुच ही बहुत करामाती है। इसके विरोध में इन्सान का लहू बहाने वाले ये लोग अंगूर की बेटी के आशिकों से क्या कम पागल हैं?

## अराजकता की ओर

पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू होने के बाद से जो समाचार आ रहे थे, उनसे यह आशा बंधती थी कि धीरे-धीरे आतंकवाद पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकेगा। यद्यपि वहां प्रतिदिन हत्याओं का सिलसिला जारी था, और उन हत्याओं में हिन्दू और सिख का भी कोई भेद नहीं किया जा रहा था। परन्तु शराब, बीड़ी, सिगरेट, पान की दुकान वाले तथा नाई और दर्जियों को धमका कर आतंकवादियों ने पिस्तौल की नोक पर उनसे पैसा वसूलने का जो सिलसिला शुरू किया था, उसमें निश्चित रूप से कमी आई थी। आतंकवादियों की गिरफ्तारियां भी रोज़ हो रही थीं और पुलिस महानिदेशक श्री रिबैरो के यह बयान भी आ रहे थे कि हमने आतंकवादियों की कमर तोड़ दी है, और वे जो कुछ कर रहे हैं, वह हताशा की स्थिति में कर रहे हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे आम जनता में कुछ-कुछ सरकार के सामर्थ्य और कानून की व्यवस्था स्थापित करने के उसके दृढ़ संकल्प पर जनता को विश्वास होने लगा।

परन्तु ५ जून को घल्लूधारा दिवस मनाने में पूरी तरह सफल न होने पर आतंकवादियों ने सप्ताह की समाप्ति होते-होते एक बार फिर पंजाब, दिल्ली तथा केन्द्रीय सरकार को अपनी उपस्थिति के प्रति सचेत कर दिया है। यह तो कभी किसी ने माना ही नहीं था कि आतंकवाद इतनी जल्दी समाप्त हो जायेगा, परन्तु स्थिति सुधरने के जो आसार प्रकट होने लगे थे उसमें भी १३ जून की घटना ने पलीता लगा दिया है। उस दिन अमृतसर में तथा पंजाब के अन्य स्थानों पर शस्त्र-अस्त्रों से लैस आतंकवादियों के गिरोह ने १७ व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया है, और दिल्ली में १४ व्यक्ति, जो सर्वथा निर्दोष थे और उनका किसी प्रकार राजनीति से कोई संबंध नहीं था, आतंकवादियों की विवेकहीन निर्मम हिंसा का शिकार हुए। इन १४ मरने वालों के अलावा २० व्यक्ति अंधाधुंध की गई गोली-वर्षा से घायल हो गए। घल्लूधारा सप्ताह समाप्त होते ही आतंकवादियों ने अपना यह उग्र रूप अकारण नहीं दिखाया है। इस सप्ताह के अन्तर्गत दिल्ली तथा पंजाब में पुलिस की चौकसी बढ़ा दी गई थी। परन्तु १३ जून की घटना ने पुलिस की उस सारी चौकसी का जिस प्रकार मखौल उड़ाया है, वह आश्चर्यजनक है। पंजाब

में १३ जून को दो परिवारों के ही जो १२ व्यक्ति मारे गये, वहां घटनास्थल से थोड़ी दूर पर ही केन्द्रीय सुरक्षा-बल की चौकी थी, परन्तु मौके पर कोई नहीं पहुंचा। इसी तरह दिल्ली के ग्रेटर कैलाश में भी आधे घण्टे के अन्दर जहां १४ व्यक्ति मार दिये गये और २० व्यक्ति घायल कर दिये गए, वहां भी पुलिस को फोन किये जाते रहे। परन्तु न पुलिस मौके पर पहुंची और न आतंकवादी पकड़े जा सके तथा दक्षिण दिल्ली में करीब घंटे भर तक आतंकवादी हिंसा का यह ताण्डव करके गायब हो गये।

पिछले दिनों दिल्ली और पंजाब की पुलिस को और अधिक आधुनिक साधनों से सन्नद्ध किया गया है, परन्तु वह सारी तैयारी रखी रह गई। दिल्ली में केन्द्रीय सरकार की नाक के नीचे और प्रधानमंत्री के निवास स्थान से केवल ४ कि०मी० की दूरी पर आतंकवादियों ने ये वारदातें करके जैसे सीधे केन्द्रीय सरकार को चुनौती दी है। अब तक दिल्ली में आतंकवादी इस प्रकार खुलकर सामने नहीं आये थे। पंजाब में तो वे लगातार खुलकर भी हमले कर रहे थे, परन्तु दिल्ली की यह घटना उनके नये साहस की सूचक है। सन् १९८२ में जत्थेदार संतोख सिंह और दिल्ली गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के श्री मनचन्दा की हत्या को तो किसी कद्र राजनीतिक रूप दिया जा सकता है, ललित माकन और अर्जुनदास की हत्या भी राजनीतिक हत्याएं गिनी जा सकती हैं, परन्तु ताज़ा घटना में राजनीति कहीं दिखाई नहीं देती। यह केवल सारी व्यवस्था और शासनतंत्र को चुनौती देकर सारे देश को अराजकता की ओर धकेलने का प्रयत्न है।

इससे पहले जब ट्रांजिस्टर-बमों के धमाके राजधानी के विभिन्न स्थानों पर किये गये थे तब भी ४५ व्यक्ति मारे गये थे, जो अधिकांशतः गरीब लोग थे और जिनका राजनीति से कोई वास्ता नहीं था। परन्तु जब से पुलिस ने ऍडवोकेट नारंग को उन धमाकों की योजना के प्रमुख अभियुक्त के रूप में पकड़ा, तब से राजधानी में आतंकवादियों की गतिविधियों पर कुछ अंकुश लगा था और पुलिस ने भी अपनी स्थिति सुधार ली थी। अभी हाल में रेलवे स्टेशनों या अन्य भीड़ भरे स्थानों के पास बम पाये गये। वे आधुनिक ढंग के काफी विस्फोटक बम थे, परन्तु समय पर पता लग जाने के कारण न तो वे उतना विनाश कर पाये और न ही राजधानी में दहशत फैला पाये। परन्तु अब आतंकवादियों ने खुलकर कहीं भी और किसी पर भी चाहे जब हमला करने की पहल अपने हाथ में होने का सबूत दे दिया है। दक्षिण दिल्ली में जिस तरह उन्होंने कोहराम मचाया है, उससे यह भी स्पष्ट हो गया है कि यहां की भौगोलिक स्थिति और पुलिस की नाकेबन्दी से भी आतंकवादी पूरी तरह परिचित हैं।

जहां आतंकवादियों ने देश को अराजकता की ओर ले जाने का यह संकेत दिया है, वहां कुछ अन्य संकेत भी साथ ही जुड़े हुए हैं। उससे लगता है कि धीरे-धीरे सरकार की शक्ति के प्रति जनता में अविश्वास पैदा करने की कोई गहरी साजिश की जा रही है। रमजान के महीने में मेरठ और दिल्ली में जैसे दंगे हुए हैं और उन दंगों में जिस प्रकार संगठित रूप से मारकाट, हिंसा और आगजनी सामूहिक रूप से हुई है, वह इससे पहले किसी दंगे में नहीं हुई थी। असल में मेरठ और दिल्ली के दंगों को दंगा कहने के बजाय उन्हें सीधा बगावत या गृहयुद्ध का लघु पूर्वाभ्यास कहना चाहिये। आश्चर्य इस बात का है कि दिल्ली और मेरठ दोनों स्थानों पर यद्यपि अब स्थिति शान्त है, परन्तु दोनों स्थानों पर सरकार की शिथिलता प्रकट हुई है; और दंगों के बाद भी सरकार ने जिस प्रकार की कार्यवाही शुरू की है, उससे आम जनता में उसके प्रति विश्वास पैदा करने की आशा नहीं की जा सकती।

उदाहरण के लिये मेरठ में अल्पसंख्यकों की शिकायत पर सरकार ने मलियाना में तो जांच का आदेश दे दिया, परन्तु मेरठ के अन्य इलाकों में जांच का आदेश नहीं दिया। यह हमारी दृष्टि में सरकार की बहुत बड़ी गलती है। क्योंकि मलियाना में जो कुछ हुआ वह मेरठ के अन्य हिस्सों में उपद्रवों की प्रतिक्रिया—मात्र था। और अब यह जानकर तो हरेक समझदार व्यक्ति चौंके बिना नहीं रहेगा कि मलियाना के जिस हत्याकांड का शोर मचाकर पी.ए.सी. को बदनाम किया गया है, उस हत्याकांड में शामिल अधिकांश लोग अन्य स्थानों पर जीवित पाये गए हैं। ऐसे भी उदाहरण हैं कि अपने रिश्तेदारों के मरने के नाम पर सरकार से बीस-बीस हजार रुपया मुआवज़ा भी ले लिया गया, और वे व्यक्ति दूसरे गांव में सुरक्षित हैं। पी.ए.सी. को बदनाम करने की साजिश ठीक उसी तरह की है, जिस तरह कि पंजाब में वहां के आतंकवादी तथा अन्य अकाली नेता सी.आर.पी. को बदनाम करने पर तुले हुए हैं। क्या पी.ए.सी. के लोगों पर हमला किया जाए, उन की बन्दूकें छीन ली जाएं और उन पर ईंट-पत्थरों के अलावा गोलियों की वर्षा की जाए? तब क्या सरकार ने पी.ए.सी. इसलिए बनाई है कि वह फूल-मालाएं लेकर उन हमलावारों के अभिनन्दन के लिए जाए? फिर तो सरकार को पी.ए.सी. वालों के हाथों में बन्दूकों के बजाय फूल-मालाएं देनी थीं। अगर सी.आर.पी.एफ और पी.ए.सी. वालों को ईमानदारी से अपना कर्तव्य—पालन करने पर भी बदनाम किया जाएगा, या दण्डित किया जाएगा तो भविष्य में तुम्हारी पी.ए.सी. या सी.आर.पी.एफ में भर्ती होने के लिए कौन आएगा? पी.ए.सी. या सी.आर.पी.एफ के प्रति शिकायत या अविश्वास की बात केवल इन दो पुलिस-बलों के प्रति नहीं है, बल्कि ऐसा अविश्वास सरकार के

प्रति है और सरकार के प्रति अविश्वास उभारने का मतलब है अराजकता को निमन्त्रण देना।

जिस प्रकार का आन्दोलन दिल्ली के कुछ राजनीतिक नेताओं ने मेरठ में पी.ए.सी. को बदनाम करने के लिए किया है, वैसा ही आन्दोलन सैय्यद इमाम बुखारी ने दिल्ली में पुलिस को बदनाम करने के लिए किया है। जो कभी तस्कर-सम्राट थे वे हाजी मस्तान आज अल्पसंख्यकों के नेता बने हुए हैं, और वे सारे उत्तर प्रदेश में धूम-धूमकर अल्पसंख्यकों को भड़का रहे हैं। दूसरी ओर शाहबुद्दीन साहब हैं, जो दूसरा जिन्ना बनने का स्वप्न देखते हैं और किसी कायदे-कानून को तोड़ने से बाज नहीं आते। कर्फ्यू के बावजूद मेरठ में जाते हैं, और पुलिस तथा सरकारी अधिकारियों को धमकी देकर चले आते हैं। कर्फ्यू का उल्लंघन करने पर भी पुलिस उनको कुछ नहीं कहती। यहां दिल्ली में संसद-सदस्य जयप्रकाश अग्रवाल को कर्फ्यू का उल्लंघन करने पर पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया, परन्तु शाहबुद्दीन साहब तो साफ बचकर आ गए। इधर सैय्यद इमाम बुखारी साहब हैं, जो जामा मस्जिद को अमृतसर का स्वर्ण मन्दिर बनाकर स्वयं मुसलमानों के भिण्डरावाले बनना चाहते हैं। यहां भी वे यह मांग कर रहे हैं कि दिल्ली में दंगे को दबाने में अपना कर्तव्य पालन करने वाले पुलिसजनों का तबादला किया जाए और जितने लोग गिरफ्तार किए गए हैं उन सब को बिना शर्त छोड़ दिया जाए। कहा जाता है कि दिल्ली के उपराज्यपाल ने उनकी ये मांगें मान ली हैं और उसके बाद ही उन्होंने जामा मस्जिद का ताला खोला है।

हम यह पूछना चाहते हैं कि क्या ये सारी घटनाएं आम जनता में सरकार के प्रति विश्वास में वृद्धि करेंगी, या देश को अराजकता की ओर ले जायेंगी? दिल्ली और पंजाब की १३ जून की घटनाएं हरियाणा के चुनाव से ठीक तीन दिन पहले होने का भी कोई विशिष्ट संकेत है, जो इसी बात की ओर इशारा करता है कि इस समय देश में कुछ ऐसी शक्तियां सक्रिय हैं, जो उसे अराजकता की ओर ले जाने पर आमादा हैं। जब तक सरकार उन शक्तियों के प्रति सावधान होकर कारगर कार्रवाई नहीं करेगी, तब तक अराजकता का वह द्वार निरन्तर और चौड़ा होता जाएगा।

२१ जून १९८७



“जिस व्यक्ति ने आत्मप्रचार से दूर रह कर पांच दशक तक राष्ट्रीय पत्रकारिता के अनेक अध्याय लिखे हों, उसे हम सम्मान न दे पाएं तो इसे कृतघ्नता ही कहा जाएगा।”

-जयप्रकाश भारती  
सम्पादक, नन्दन, दिल्ली

## गोरखा भी खालिस्तानियों के पथ पर

जून के तीसरे सप्ताह में गोरखालैंड की मांग करने वालों ने दार्जिलिंग और उसके आस-पास के इलाके में जो खून की होली खेली है, उससे जनसामान्य के मन में यही धारणा बनी कि अब सुभाष घीसिंग के अनुयायी भी खालिस्तान की मांग करने वाले आतंकवादियों के रास्ते पर चल पड़े हैं। सब की ज़बान पर एक ही बात थी कि क्या हिमालय की इस उपत्यका में भी एक दूसरा पंजाब तैयार हो रहा है? लोग आये दिन पंजाब में आतंकवादियों के कारनामों को पढ़ने के इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि अब किसी के दिमाग में वैसी सनसनी पैदा नहीं होती, जैसी पहले हुआ करती थी। राष्ट्रपति शासन के बाद भी कोई दिन ऐसा नहीं जाता जब किसी न किसी निरपराध व्यक्ति की आतंकवादियों द्वारा हत्या नहीं की जाती। इतना ज़रूर है कि अब प्रतिदिन कोई न कोई आतंकवादी भी अवश्य मारा जाता है, या पकड़ा जाता है। कितनी ही सनसनीखेज घटनाएं हों, यदि वे रोज़मर्रा की बात बन जाएं तो मनुष्य की चेतना को प्रभावित करना छोड़ देती हैं। कम से कम उस रूप में प्रभावित नहीं करती जिस रूप में वे शुरू-शुरू में प्रभावित करती हैं। क्या यही कारण है कि आतंकवादियों ने पंजाब से हटकर दिल्ली में एक ही रात में १४ आदमियों की हत्या कर डाली, और इस घटना ने सचमुच ही न केवल सारी दिल्ली को दहला दिया, अपितु देश के आम आदमी की चेतना को भी झकझोर दिया। हरियाणा के चुनाव से ठीक तीन दिन पहले की गई दिल्ली की यह वारदात शायद चुनाव को प्रभावित करने के लिए भी की गई हो, परन्तु हरियाणा की जनता उससे कुछ विशेष प्रभावित हुई हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। पुलिस की सारी चौकसी धरी रह गई।

इधर का मोर्चा कुछ ठंडा हुआ तो अलग गोरखालैंड की मांग करने वालों ने हिंसा का और अधिक वीभत्स रूप दार्जिलिंग और कलिंगपोंग में दिखाना शुरू कर दिया। जैसी निर्ममता और विवेक-शून्यता पंजाब के आतंकवादियों ने दिखाई उससे कम निर्ममता और विवेकशून्यता गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट के लोगों ने नहीं दिखाई। उन्होंने बिजली-घर जला दिया, जंगलात का ऑफिस जला दिया, स्कूल जला दिया, पोल्ट्री-फार्म जला दिया, बैंक जला दिया, लोक निर्माण विभाग



के गोदाम में आग लगा दी और पुलिस तथा सुरक्षा बल के लोगों पर भी हमला करने से बाज़ नहीं आए। अनेक स्थानों पर उन्होंने पुलिस की चैक-पोस्ट पर भी हमला किया। अन्त में सुभाष घीसिंग को केन्द्रीय गृहमंत्री बूटा सिंह ने अपना विशेष दूत भेजकर बुलवाया और उनसे १३ दिन के घोषित बन्द को वापिस लेने की अपील की। तब तक बन्द को घोषित हुए ६ दिन हो चुके थे। अन्त में सुभाष घीसिंग से प्रधानमंत्री की मुलाकात तय हो गई, जिसकी २२ जुलाई को होने की संभावना है। तभी यह बन्द खत्म करने की घोषणा की गई, लेकिन तब तक ये आतंकवादी करोड़ों रुपये की हानि कर चुके थे।

एक समय था जब धनी लोग अपने निवास-स्थान का पहरेदार किसी सिख को रखना पसन्द करते थे। बड़ी-बड़ी कम्पनियों के मुख्य द्वारों पर भी बन्दूक लिए सिख पहरेदार के रूप में तैनात दिखाई देते थे। परन्तु जब से पंजाब में खालिस्तानियों का आन्दोलन चला है तब से सारे देश में, बल्कि हम तो कहेंगे सारे संसार में सिखों की विश्वसनीयता घट चुकी है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सब सिख आतंकवादी हैं या राष्ट्रद्रोही हैं। आतंकवादियों की तो अपनी नस्ल ही अलग है। परन्तु मनुष्य के स्वभाव का क्या किया जाए, वह तो बारीकी में जाता नहीं। वह तो बाहरी वेश-विन्यास और शक्ल-सूरत को देखकर ही विश्वसनीयता या अविश्वसनीयता का निर्णय करता है। सिखों के प्रति विश्वसनीयता घट जाने का परिणाम यह हुआ है कि अब कहीं किसी कम्पनी या कारखाने या अमीर की कोठी पर पहरेदार सिख दिखाई नहीं देगा। दो सिख अंगरक्षकों द्वारा ही प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या किए जाने के पश्चात् यह अविश्वसनीयता इतनी बढ़ गई है कि इसको हटाना आसान नहीं है, परन्तु यह गनीमत है कि नेपाली या गोरखा लोगों के प्रति अभी विश्वसनीयता बाकी है। बल्कि पंजाब में तो सब धनी लोगों के निवास स्थान पर पहरा देने वाले अब सिख नहीं प्रायः गोरखे ही दिखाई देंगे। यूं भी नेपालियों ने और गोरखों ने अपने आचरण से कभी राष्ट्रद्रोही होने का आभास नहीं दिया। आज्ञापालन की दृष्टि से जिस तरह ब्रिटिश सेना में गोरखों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा, इसी प्रकार भारतीय सेना में भी उनका वह गौरवास्पद स्थान ज्यों का त्यों सुरक्षित है। दार्जिलिंग की तीन तहसीलों में खेती गई खून की होली को लेकर भी समस्त भारत के निवासियों में नेपालियों के प्रति घृणा या अविश्वास की भावना पैदा होगी, ऐसा प्रतीत नहीं होता। उसका कारण है।

पंजाब में जिस प्रकार अकालियों ने सब तरह से समस्त सरकारी विभागों में तथा अन्य सभी क्षेत्रों में अपना वर्चस्व प्राप्त करके भी यह मिथ्या शोर मचाया कि सिखों के साथ अन्याय किया जा रहा है, तो इस बात को कोई मानने को तैयार

नहीं था, क्योंकि बात इससे बिल्कुल उल्टी थी। सारे पंजाब में अन्याय का शिकार सिख नहीं, हिन्दू थे। फिर भी सिखों ने भारत सरकार को हिन्दू-सरकार कहकर अपने प्रति उसके अत्याचारों की मनगढ़ंत कहानियां बनाई, और एक विशाल झूठ के आधार पर मिथ्या आंदोलन खड़ा कर दिया। परन्तु गोरखालैंड की मांग करने वालों के बारे में ऐसी बात कहना कठिन है। जब नेपालियों को असम से निकाला गया, मेघालय से निकाला गया और पूर्वांचल के विभिन्न स्थानों पर उनको परदेशी कहकर मेहनत मजदूरी के छोटे-मोटे कामों से भी वंचित कर दिया गया, तब उनके मन में अपमानबोध की भावना तो आनी ही थी। जो लोग कई पीढ़ियों से भारत में रह रहे थे और भारत को ही स्वदेश समझकर उसे उसी तरह प्यार करते थे, जिस तरह भारतवासी करते हैं, जब उनके साथ यह भेदभाव किया जाने लगा तो उनके मन को चोट लगनी ही थी। इसलिए धीरे-धीरे सुभाष घीसिंग ने भारत में रहने वाले नेपालियों के मन में इस अपमानबोध की भावना को उभारा और लगातार पांच साल तक धीरे-धीरे सुलगता हुआ यह आन्दोलन इस हद तक पहुंच गया कि हिंसा के वीभत्स रूप को ग्रहण करने पर भी अब इस आन्दोलन के अनुयायियों को कोई हिचक नहीं होती।

समस्या का एक पहलू और भी है। भारत में रहने वाले ये नेपाली, जिनकी पुरानी पीढ़ियां मेहनत-मजदूरी, कुलीगिरी, मकानों व दुकानों की रखवाली या पर्वतारोहियों के भारवाहक बनकर अपना गुजारा करती रहीं, अब उनकी नई पीढ़ियां जब पढ़-लिखकर होशियार हो गईं, तब वे भी उस प्रकार की श्रमप्रधान और छोटे दर्जे के समझे जाने वाले मेहनत-मजदूरी के कामों को करने को तैयार नहीं। उनको भी व्हाइट-कलर वाले काम चाहिए, जिसका परिणाम है शिक्षितों की बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी। शिक्षितों की इस व्यापक बेरोज़गारी ने ही जहां पंजाब में आतंकवादियों को सदा नई कुमुक पहुंचायी है, वहां गोरखालैंड का आन्दोलन करने वालों में भी शिक्षित बेरोज़गारों की भीड़ ज्यादा है। अब वे हरेक चीज़ में समानता का दर्जा चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि नेपाली होने के कारण उनको कोई दूसरे दर्जे का नागरिक समझे। इसलिए उनकी मांग है कि दार्जिलिंग जिले के जिस इलाके में नेपालियों का बहुमत है, उस इलाके को गोरखालैंड का नाम दिया जाए, और उनका एक अलग प्रान्त बना दिया जाए। इसके साथ ही उनकी यह भी मांग है कि नेपाली को भारतीय संविधान की आठवीं सूची में स्थान दिया जाए। नेपाली भाषा को मान्यता देने का प्रस्ताव पश्चिमी बंगाल की विधान सभा और त्रिपुरा की विधान सभा पास करके केन्द्र को भेज चुकी है; परन्तु केन्द्र ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। इसलिए सुभाष घीसिंग को आग उगलने का और मौका मिल गया।

समस्या का सब से दुखद पहलू यह है कि स्वयं केन्द्रीय सरकार और इका संगठन गोरखालैंड के आन्दोलन को प्रच्छन्न रूप से समर्थन देती रही और यह सोचती रही कि ज्यों-ज्यों गोरखालैंड का आंदोलन उग्र होगा, त्यों-त्यों पश्चिमी बंगाल की सरकार का सिरदर्द बढ़ेगा। यह बहुत ही क्षुद्र राजनीति थी। केन्द्र ने यह नहीं सोचा कि पश्चिमी बंगाल का सिरदर्द भी किसी दिन अन्त में केन्द्र का ही सिरदर्द साबित होने वाला है। अब वही बात होती दिखाई देती है। दूसरा दुखद पहलू यह है कि अब देश की जनता में यह भावना घर करती जा रही है कि सरकार से कोई बात मनवानी हो तो वैधानिक रास्ते से आन्दोलन करने पर सरकार के कान पर जूं नहीं रेंगती; परन्तु जब हिंसा प्रधान आतंकवाद का आश्रय लिया जाता है तभी सरकार झुकती है। पंजाब, असम, मिजोरम में केन्द्रीय सरकार ने जो समझौते किए हैं, वे हिंसा की बदौलत ही किए हैं। उसी रास्ते पर आज ये भारतवासी नेपाली भी चलना चाहते हैं।

समय रहते सरकार को चेतना चाहिए। यह अच्छा हुआ कि पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु के साथ परामर्श करने के बाद गृहमंत्री ने सुभाष घीसिंग से यह बात मनवा ली है कि प्रधान मंत्री से वार्ता के समय गोरखालैंड की स्वायत्तता पर विचार नहीं होगा। परन्तु नेपाली भाषा को संविधान में स्थान देने में सरकार को विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए। आखिर संविधान की आठवीं अनुसूची में हमने सिंधी को भी तो स्थान दे ही रखा है। सिंध भले ही पाकिस्तान में चला गया हो किन्तु सिंधीभाषियों का बहुसंख्यक समाज भारत में विद्यमान है। इसलिए उनकी भावना का आदर करते हुए यदि सिंधी को स्थान दिया, तो सारे भारत में लगभग तीन करोड़ की आबादी वाले नेपालियों की भावना का आदर करते हुए नेपाली भाषा को संविधान में मान्यता क्यों न दी जाए?

५ जुलाई १९८७



‘क्षितिश जी की दृष्टि दार्शनिक है। वे स्वतन्त्र विचारक हैं। घटनाओं का विश्लेषण एवं उनका वर्णन उनके स्वतन्त्र चिन्तन का द्योतक है, तो उनकी वर्णन-शैली साहित्यिक प्रतिभा का परिचय देती है। वे निर्भीक समालोचक हैं और संस्थागत अथवा सामाजिक दोषों और भ्रष्टाचारके कटु आलोचक हैं। उनको दोषों से घृणा है, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को वो प्रेमभाव से देखते हैं।...भारत के अतीत के गौरव तथा इतिहास में उनकी विशेष रुचि है।’

-वीरेन्द्रसिंह परमार

(पूर्व सम्पादक अमेरिकन रिपोर्टर)

२ यू० बी० जवाहर नगर, दिल्ली

## अब पंजाब में क्या करें?

जब से पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू हुआ है, तब से इतना तो अवश्य हुआ कि पहले शराब और पान—बीड़ी की दुकानों तथा नाईयों और दर्जियों को जो धमकी भरे पत्र लिखकर जबरदस्ती पैसे वसूल किये जाते थे, वह सिलसिला रुका है। परन्तु आतंकवादियों द्वारा प्रतिदिन किये जाने वाले हत्याकाण्ड में कोई कमी आई हो ऐसा दिखाई नहीं देता। पूर्व मुख्यमंत्री श्री बरनाला तो खुले आम यह आरोप लगाते ही हैं कि उनके मंत्रीमंडल के सत्तारुढ़ होने पर उग्रवादियों द्वारा जितने लोग मारे जाते थे, अब राष्ट्रपति—शासन लागू होने के पश्चात् उससे अधिक व्यक्ति मारे जा रहे हैं। बरनाला की इस बात में भी कोई अत्युक्ति नहीं है। आये दिन हिंसा का जो ताण्डव अपना नित नया नंगापन दिखाता जा रहा है, वह कुछ इस तरह रोजमर्रा की घटना बन गया है कि जन—चेतना को उस तरह उद्वेलित नहीं करता, जिस तरह पहले किया करता था। यह मानवीय स्वभाव की दुर्बलता है। कुछ लोग तो यह भी मानने लगे हैं कि पंजाब की समस्या ऐसा स्थाई रोग बन गया है जिसका कोई उपचार नहीं है।

यह ठीक है कि उग्रवादियों द्वारा मारे जाने वाले लोगों में अब केवल एक ही सम्प्रदाय के लोग नहीं हैं। सिख भी काफी संख्या में मारे जा रहे हैं। पुलिस द्वारा प्रायः रोज ही किसी न किसी खतरनाक आतंकवादी के पकड़े जाने की घोषणा की जाती है। परन्तु पहल अब भी आतंकवादियों के हाथ में है। वे पंजाब में ही नहीं, दिल्ली और हरियाणा में भी चाहे जहां अपनी नृशंसता का नग्न परिचय दे जाते हैं और फिर उसकी सारी चौकसी पर चौका लग जाता है। स्वयं रिबैरो यह स्वीकार करते हैं कि अभी तक खूंखार आतंकवादियों के गिरोह के सरगना तीस व्यक्ति ऐसे हैं, जो कि पुलिस की पकड़ में नहीं आ सके हैं और वे चाहे जहां वारदात करने के लिये स्वतंत्र हैं। दिल्ली में हरजिन्दर सिंह जीन्दा और सतनाम सिंह बाबा की गिरफ्तारी से आतंकवादियों की कमर टूट जायेगी, यह सोचना गलत होगा। अब जिस प्रकार मुठभेड़ों में आतंकवादी मारे जाते हैं, उसी प्रकार पुलिस के सिपाही भी मारे जाते हैं। एक तरह से अब यह सुरक्षा—सैनिकों और पुलिस तथा आतंकवादियों के बीच खुली जंग जैसी स्थिति है।

सरकार ने और इका तथा अन्य राजनैतिक दलों ने आतंकवादियों को पूरे समाज से अलग-थलग करने का जो अभियान चलाया था, वह भी इका के अनुयायियों के संकल्प-बल के अभाव में अपनी मौत अपने आप मर गया है। केवल भारतीय जनता पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ लोग ही अभी तक उस अभियान में ईमानदारी से लगे हुए हैं, जबकि इका को अपनी राजनीतिक जोड़-तोड़ से ही फुरसत नहीं है। आतंकवादियों की पहल का यह हाल है कि वे भारत सरकार के गृहमंत्री के रिश्तेदारों को भी बाकायदा योजना बनाकर गोलियों से भून डालते हैं और प्रधानमंत्री "हम देखेंगे, हम देख रहे हैं, और हमें देखना है" के सिवाय और कुछ कह नहीं पाते। बोफोर्स-काण्ड ने प्रधानमंत्री समेत सारी इका को कितना डाँवाडोल कर दिया है कि वे कसमें खा-खाकर जनता के सामने अपनी पाक़ीजी का बखान करना चाहते हैं। परन्तु जनता है कि उनकी बातों पर विश्वास ही नहीं कर पाती। इका के सारे नेता राम जेटमलानी और वी.पी. सिंह के अभियान से इस तरह आतंकित हैं कि वे अपने आलोचकों को कांग्रेस से निकाल कर अपनी आक्रामकता बरकरार सिद्ध करना चाहते हैं। असल में यह केवल उनके बचाव का अभियान है।

४ अगस्त के सर्बत खालसा में आतंकवादियों पर काबू न पा सकने की खीज मिटाने के लिये अकाल तख्त के कार्यवाहक जत्थेदार स्वर्ण मन्दिर छोड़कर अपने गांव चले गये और एक तरह से आतंकवादियों से कह गये—“अब तुम्हारे हवाले वतन साथियो।” जब रागी ही बैरागी होकर चले गये तो शिरोमणि गुरुद्वारा कमेटी के अन्य पदाधिकारी भी रागी जी के राग से कब तक अनुराग रखते। ये सब भी स्वर्ण मन्दिर छोड़कर और जो जिम्मेदारी उनको सौंपी गई थी, उससे मुंह मोड़कर अपने-अपने घर जाकर बैठ गये। फिर क्या था? आतंकवादियों के लिये मैदान साफ हो गया। अब सारे स्वर्ण मन्दिर पर और अकाल तख्त पर उनका अखण्ड साम्राज्य है। आतंकवादियों ने जहां यह खुले-आम घोषणा कर दी है कि वे खालिस्तान के रास्ते में बाधक बनने वाले सभी रोड़ों को हटा देंगे, वहां पंथक कमेटी ने भी यह घोषणा कर दी है कि अभी तक शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी का जो पैसा कार और बंगले खरीदने में खर्च होता था, अब वह घोटाला बर्दाश्त नहीं किया जायेगा। आगे से सभी गुरुद्वारों में आने वाले चढ़ावे का इस्तेमाल हथियार खरीदने में करना होगा ताकि सिख नौजवान खुलकर खालिस्तान की लड़ाई लड़ सकें। जिस कमेटी का काम ऐतिहासिक गुरुद्वारों का प्रबन्ध करना था, जब वह ही अपनी जिम्मेदारी छोड़कर बैठ गई, तो शिरोमणि कमेटी के सदस्यों के भी हाथ पांव फूल गये और वे भी अपने पदों से इस्तीफा देकर अपने घरों में बैठ गये। स्वर्ण मन्दिर की परिक्रमा में चढ़ावे की गुल्लक में चढ़ा पैसा तो उनके हाथ में है ही।

इतना ही नहीं स्वर्ण मन्दिर के अलावा आनन्दपुर साहब और दमदमी टकसाल पर भी आतंकवादियों का पूरा कब्जा है। इस तरह सिखों के सबसे बड़े और सबसे पवित्र माने जाने वाले तत्त्वों पर आतंकवादी दनदना रहे हैं और वे वहां आने वाले चढ़ावे का क्या उपयोग करते होंगे, यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार आतंकवादियों ने अपने धार्मिक स्थलों और उनकी आमदनी को राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध का साधन बना दिया है। सिख धार्मिक प्रतिष्ठान के सभी मुखियाओं के हटने और राज्य तथा उनके साथियों द्वारा अपनी ज़िम्मेदारी से मुंह मोड़ लेने से सिखों के सबसे पवित्र तीर्थों का यह हाल होना ही था। यह स्थिति भिंडरवाला के समय से भी अधिक खराब है, क्योंकि तब जत्थेदारों, मुख्य-ग्रन्थियों और शिरोमणि कमेटी ने अपनी ज़िम्मेदारियां इस प्रकार आतंकवादियों को नहीं सौंपी थीं। सच बात तो यह है कि ये सब भी आतंकवादियों से उतने ही भयभीत हैं, जितनी कि आम जनता, और इन लोगों ने अपनी जान बचाने के लिये ही ऐसा किया होगा।

समस्त सिख समाज ऐसा नेता-विहीन है कि उसमें कोई संकल्प-बल और प्रखर राष्ट्र-भक्ति से उद्देलित मानस वाला रहबर नज़र नहीं आता। स्वयं गृहमंत्री बूटासिंह कह चुके हैं कि पंजाब या पंजाब के बाहर के सिख-समाज में इतना आत्मबल नहीं है कि वह आतंकवादियों के विरोध में कोई कारगर अभियान चला सकें। अन्यथा क्या कारण है कि स्वर्ण मन्दिर से हुक्मनामा जारी करने वाले मुख्यग्रंथी आज तक कभी आतंकवादियों को तनखईया घोषित नहीं कर सके और वे दुनिया को बेवकूफ बनाने के लिये यह विचित्र तर्क देते रहे कि सच्चा सिख कभी बेगुनाहों की हत्या नहीं कर सकता, इसलिये हत्यारे आतंकवादी सिख नहीं हैं। तो उनके विरुद्ध हुक्मनामा क्यों जारी किया जाए?

यही तर्क देने वाले मुख्यग्रंथी पुलिस के साथ मुठभेड़ में किसी आतंकवादी के मारे जाने पर पुलिस को बदनाम भी करते रहे कि पुलिस झूठी मुठभेड़ें दिखाकर सिखों का कत्लेआम कर रही है। उधर रिबैरो ने बार-बार चुनौती दी है कि एक भी ऐसा केस बताया जाए, जब किसी नकली मुठभेड़ में किसी गैर-आतंकवादी सिख नौजवान को मारा गया हो। यदि आतंकवादी सिख नहीं है, तो उसके मुठभेड़ में मारे जाने पर पुलिस के विरुद्ध आन्दोलन जिस मानसिकता का द्योतक है, उसे सम्य भाषा में केवल उन्मत्त-प्रलाप ही कहा जा सकता है।

प्रश्न यह है कि ऐसी अवस्था में अब पंजाब में क्या किया जाए? अगर आतंकवादी अपने धार्मिक स्थानों को इस प्रकार खुल्लमखुला अपनी राष्ट्रविरोधी हरकतों का अड्डा बनायेंगे, तब भी क्या पुलिस और सेना 'टुकटुक दीदम दम न कसी दम' की मुद्रा में अलग खड़ी होकर चुपचाप देखती रहेगी? आतंकवादियों के कारण

जिनको गुरुद्वारों की पवित्रता भंग होती हुई दिखाई नहीं देती, उनकी सेना और पुलिस के प्रवेश पर गुरुद्वारों की पवित्रता भंग होती हुई अवश्य दिखाई देगी। परन्तु क्या इससे पुलिस और सेना अपना कर्तव्य पूरा करने में कोताही बरतेगी? यदि ऐसा हुआ तो क्या राष्ट्र बच सकेगा? इसलिये अब भी केवल उपाय वही है जो चिरकाल से हम कहते आ रहे हैं। अब लोग चीजों को लटकाने वाली नीति से तंग आ चुके हैं। वे परिणाम की प्रतीक्षा में हैं।

यह ठीक है कि पंजाब की समस्या का समाधान अन्ततः पुलिस और सेना से नहीं होगा। समाधान तो राजनीतिक ही होगा, परन्तु पहले पंजाब को इस लायक तो बनने दो कि वहां लोकतंत्र के माध्यम से कोई राजनीतिक पहल की जा सके। राजीव तथा अन्य नेता बार-बार कहते रहे हैं कि बातचीत से समस्या हल की जाय, पर बातचीत आखिर किससे? क्या पंजाब में इस समय कोई भी ऐसा ज़िम्मेदार सिख है, जिससे किसी भी तरह की बातचीत का कोई परिणाम निकल सके? राष्ट्रपति-शासन लागू होने के पश्चात् अब केन्द्रीय सरकार यह शिकायत नहीं कर सकती कि राज्य सरकार की ओर से राजनीतिक दखलअंदाजी की जा रही है। या उसके कुछ मंत्री आतंकवादियों से मिले हुए हैं।

लोकसभा काफी पहले पास कर चुकी है, और अब तो सरकार ने आतंकवादी और तोड़फोड़ की गतिविधियों को रोकने के लिये नया विधेयक भी पास कर दिया है। परन्तु आज तक सरकार ने सुरक्षा पट्टी नहीं बनाई। हम शुरु से कहते आ रहे हैं कि पंजाब, राजस्थान और गुजरात की सीमा पर लगभग २० मील चौड़ी एक सुरक्षा-पट्टी बनाई जाए, और वहां सेना तैनात की जाए। परन्तु सरकार सब प्रकार के कानूनों से लैस होकर भी आज तक वैसा नहीं कर पाई। इसका परिणाम यह है कि आतंकवादियों के नये कारनामों से घबरा कर सीमावर्ती गुरदासपुर जिले से हिन्दुओं का पुनः पलायन शुरु हो गया है। केन्द्रीय सरकार अब भी नहीं चेतेगी तो कब चेतेगी?

६ सितम्बर १९८७



“वे सरस्वती के वरद पुत्र हैं। प्रायः लेखनी के धनी वाणी के धनी नहीं होते और वाणी के धनी लेखनी के धनी नहीं होते। पर उनमें दोनों का मणि-कांचन संयोग है, जो बहुत दुर्लभ है।...क्षितीश जी भी, महात्मा गांधी की तरह तन से क्षीण हों, पर मन से सदा पीन हैं।”

-ब्रह्मदत्त स्नातक

पूर्व सूचनाधिकारी, भारत सरकार  
सी ४/३३२ बी, जनकपुरी, नई दिल्ली

## पंजाब का सप्तसूत्री समाधान

सात मई के हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रसिद्ध पत्रकार श्री खुशवन्त सिंह ने, जो अपनी बेबाकी के लिये मशहूर हैं, पंजाब की समस्या के समाधान के लिये सात सूत्र सुझाये हैं। वे लिखते हैं—

“प्रधानमंत्री राजनीतिज्ञों, पत्रकारों और अवकाश—प्राप्त पुलिस अधिकारियों से जिस प्रकार परामर्शों का अनन्त दौर चला रहे हैं, उससे यह असर पड़ता है कि अभी तक वे कोई निश्चय नहीं कर पाये हैं कि पंजाब में शान्ति कैसे स्थापित हो सकती है। दूसरी ओर मेरा यह विश्वास है कि हम सब यह जानते तो हैं कि क्या करना चाहिये? परन्तु हममें उसको कहने की हिम्मत नहीं है। विरकाल तक हम इस दुविधा में उलझे रहे कि सबसे आवश्यक बात यह है कि ऐसे सही व्यक्ति की तलाश की जाए, जिसके साथ सरकार बातचीत कर सके। साथ ही उसे इतनी विश्वसनीयता भी प्राप्त हो कि वह उस बातचीत के निष्कर्ष को लागू करवाने में समर्थ हो। लेकिन यह तो वह पुराना भ्रम है जिसे ‘घोड़े के आगे गाड़ी रखने’ की कहावत से कहा जाता है। हमें ऐसा व्यक्ति कभी नहीं मिलेगा, वह तो हमें पैदा करना पड़ेगा। आप सब बरनालाओं, बादलों, दरबारियों, बलवन्तों, अमरीन्द्रों, रागियों, रोड़ों और पंजाब के अनेक मुख्यमंत्रियों से संयुक्त रूप से भी बात कर सकते हो, परन्तु उसका परिणाम कुछ नहीं निकलेगा। वे कुछ दिन गद्दी पर रहेंगे और उसके बाद कूड़े के ढेर में फेंक दिये जायेंगे। हिंसा ज्यों की त्यों जारी रहेगी। हमें जिस चीज़ की तलाश करनी है, वह कोई एक या अनेक ऐसे व्यक्ति नहीं जो पंजाब का नेतृत्व कर सकें, बल्कि उन सिद्धान्तों की तलाश करनी है और उन पर डटे रहना है, जिनके ऊपर हम अमल कर सकें। भले ही उसका तात्कालिक परिणाम कुछ भी हो। यदि आप मेरी बात मानें तो मेरा विश्वास है कि कुछ समय के बाद पंजाब का संकट समाप्त हो जायेगा, और उसके बाद तुम किसी भी खोटा सिंह को मुख्यमंत्री बना सकते हो वह उतना ही सफल होगा जितना कैरों और जैलसिंह हुए थे।

वे सिद्धान्त कौन से हैं? मैं ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह फिर दोहरा रहा हूँ। यद्यपि मैं पहले भी उनका बार—बार उल्लेख कर चुका हूँ। मुझे आशा है कि मेरे इन सुझावों को स्वीकरणीय समझा जायेगा।



१. जिन समझौतों पर हमने गम्भीरता से हस्ताक्षर किये हैं, उन्हें पूरा करें। चण्डीगढ़ पंजाब को दे दें। जिस तारीख को देने का समझौता हुआ था उसी तारीख को हमें दे देना चाहिये था। सरकार को उससे मुकरने का अधिकार नहीं है। उस तारीख के बीत जाने के बाद बरनाला को अपने पद से इस्तीफा दे देना चाहिये था। जब सारे तथ्य पहले से विदित हैं, तो बार-बार जांच-आयोग बैठाने की कोई आवश्यकता नहीं। उससे किसी को मूर्ख नहीं बनाया जा सकता। हालांकि व्यक्तिगत रूप से मैं इस पक्ष में हूँ कि चण्डीगढ़ को संघीय प्रदेश रखा जाये, न वह इधर रहे और न उधर रहे। उससे समझौते की मंशा पूरी हो जाती है।
२. सतलुज-यमुना-जोड़ नहर को पूरा करो और नदी का पानी हरियाणा में जाने दो। किस राज्य को कितना पानी मिले इस पर वे बातचीत से फैसला करें। कीमती पानी को व्यर्थ बरबाद करना राष्ट्रीय अपराध है।
३. जो शायद सबसे महत्वपूर्ण है— 'पंजाब की बचत को पंजाब के औद्योगीकरण में ही लगाओ।' इस समय पंजाबी लोग राष्ट्रीयकृत बैंकों में जितना धन रखते हैं, उसका सत्तर प्रतिशत धन अन्यत्र लगाया जाता है। पंजाब विकास की दस प्रतिशत दर को कायम रख सकता है, और इस समय देश को जो कुछ दे रहा है, उससे और अधिक दे सकता है। पंजाब में मैट्रिक पास और ग्रेजुएट बने युवक हर वर्ष काफी संख्या में तैयार होते जा रहे हैं। उनको वहां खेती में नहीं खपाया जा सकता। जब तक उनको रोजगार नहीं मिलेगा, तब तक वे असन्तोष के मुख्य स्रोत रहेंगे और आतंकवाद के भी। पुलिस और सेना में उनको भर्ती करके पंजाब के बाहर उनकी नियुक्ति कर दी जाये तो पंजाब के असन्तुष्ट लोगों का बहुत बड़ा वर्ग वहां से हटाया जा सकेगा।
४. दृढ़तापूर्वक यह घोषणा करो कि 'सरकार ऐसे किसी व्यक्ति से बात नहीं करेगी जिसके हाथ में बन्दूक हो और वह खालिस्तान की मांग का समर्थन करता हो।' खालिस्तान की मांग करने वाले के साथ वैसा ही व्यवहार होना चाहिये जैसा देश-द्रोहियों के साथ होता है। जिस किसी स्थान पर खालिस्तानी झण्डा लहराया जाये उस पर पुलिस तुरन्त कब्जा कर ले।
५. नवम्बर १९८४ में जिन लोगों ने सिखों के विरुद्ध हिंसा को भड़काया, या उसमें हिस्सा लिया, उनको स्वयं अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करनी होगी, अन्यथा सज़ा भोगनी होगी। उनके अपराधों के लिये फिलहाल उन पर मुकदमा चलाना अलाभदायक हो सकता है, परन्तु उस पर केन्द्रीय सरकार कम से कम इतना तो कर सकती है कि हिंसा को भड़काने के कारण जिनके विरुद्ध लोगों के

हलफनामों दायर किये हैं, उनसे सरकार अपने आपको दूर रखे। इस विषय में कार्यवाही की सलाह देने के लिये कोई जांच-आयोग या जांच-समितियाँ बैठाना बेकार है। जब तक सरकार निर्दोष लोगों के खून के दागों से अपने हाथों को साफ नहीं कर लेती, तब तक उसे यह आशा करने का कोई अधिकार नहीं है कि कोई उसकी सदाशयता पर विश्वास करे।

६. विभिन्न जेलों में जिन लोगों को बिना जांच के नजरबन्द रखा गया है, उनको बिना किसी शर्त के छोड़ दिया जाये। बिना कोई मुकदमा चलाये लगातार चार साल तक किसी को आज़ादी से वंचित करना, सरकार पर इस आरोप का अवसर देना है कि वह अपने नागरिकों को प्रारम्भिक मानवाधिकार देने से इंकार कर रही हैं। इस समय आवश्यकता उदारता की है, बदला लेने की भावना की नहीं है।
७. 'ब्लू स्टार आपरेशन' के लिये खेद की भावना प्रकट करो। भले ही आप यह विश्वास करें या न करें कि वह जरूरी था, किन्तु बाद की घटनाओं ने यह तो स्पष्ट कर ही दिया है कि उससे लाखों लोगों की भावनाओं को गहरी ठेस पहुंची थी। दुखी दिलों पर मरहम के लिये ऐसी मांग करना कोई बड़ी बात नहीं। कोई प्रतीकात्मक पश्चात्ताप का उद्गार प्रकट कर देने से उन लोगों की भी निष्ठा प्राप्त की जा सकेगी, जिनके मन में अपने आपको आवांछनीय समझे जाने की धारणा घर कर गई है। अपनी राष्ट्रीय एकता की सुरक्षा के लिये ही इस प्रकार का संकेत आवश्यक है।

मेरे इन सात सूत्रों पर ठण्डे दिमाग से विचार करिये। यदि मैं गलती पर होऊँ तो मुझे सुधारिये। यदि आप मुझसे सहमत हैं तो पंजाब में स्थिति को सामान्य बनाने के लिये हम एक प्रकार का मांग-पत्र मिलकर प्रस्तुत कर सकते हैं।

इसके साथ ही प्रसिद्ध हिन्दू राष्ट्रवादी नेता श्री बलराज मधोक पंजाब-समस्या का जो समाधान सुझाते हैं उसकी ओर भी हम पाठकों का ध्यान खींचना चाहते हैं। उनका कहना है—

“सिखों में ऐसे बहुत थोड़े लोग हैं जो स्वतन्त्र खालिस्तान के पक्षपाती हैं। भारत से सर्वथा पृथक् किसी राज्य की बात न तो युक्ति-संगत है, और न ही सिखों के हित में है। भारत की कोई भी सरकार अब किसी भी कीमत पर देश का और अंग-भंग नहीं होने दे सकती। हां संविधान के अन्तर्गत पंजाब का पुनर्गठन करके एक ऐसे राज्य की स्थापना अवश्य की जा सकती है, जिसमें सिख प्रभावपूर्ण स्थिति में हों। जिस प्रकार कश्मीर और मिज़ोरम राज्य आन्तरिक स्वायत्तता की मांग कर रहे हैं, वैसी ही स्वायत्तता उस राज्य को भी दी जा सकती है। ऐसे राज्य की

राजधानी अमृतसर को बनाया जा सकता है। जब कभी अपने ही बोझ से पाकिस्तान टूटेगा, तब यह राजधानी लाहौर में स्थानांतरित की जा सकती है। इस प्रकार भारत में दो पंजाब राज्य हो जायेंगे— एक सिख-बहुल और एक हिन्दी-बहुल। सिख-बहुल राज्य की राजधानी अमृतसर, और हिन्दी-बहुल की राजधानी चण्डीगढ़। भारत के बाहर एक तीसरा पंजाब भी होगा, जो मुस्लिम-बहुल होगा और उसकी राजधानी इस्लामाबाद होगी। सम्भवतया हमें मराठी और तेलगू-भाषी राज्य भी एक से अधिक बनाने पड़ सकते हैं। हिन्दी-भाषी राज्यों का, जो अपने आकार और आबादी के लिहाज से बहुत बड़े हैं, पुनर्गठन करके उनकी संख्या भी वर्तमान संख्या से अधिक हो सकती है।

यह कोई आदर्श समाधान नहीं है किन्तु इसके माध्यम से पाकिस्तान के हाथ के खिलौने बने तथाकथित आतंकवादियों को बिल्कुल अलग-थलग किया जा सकता है। पाकिस्तान को दोष देना व्यर्थ है, वह तो भारत का जन्मजात शत्रु है ही। हमें क्षति पहुंचाने के लिये वह किसी भी दूरी तक जा सकता है। सुदृढ़ और जवाबी नीति तो हमें स्वयं ही अपनानी पड़ेगी।”

पंजाब समस्या के सम्बन्ध में हमने श्री खुशवंत सिंह और श्री मधोक द्वारा सुझाये गये दो समाधान प्रस्तुत किये हैं। अपनी ओर से बिना कोई टीका-टिप्पणी किये हमारा निवेदन है कि पाठक इन दोनों सुझावों पर स्वयं विचार करें।

हमें इस विषय में जो कुछ कहना होगा वह फिर कभी कहेंगे।

१५ मई १९८८



“इंदिरा गांधी की हत्या से कुछ और गहरी और बड़ी मान्यताएं भी जुड़ी हुई हैं। हिन्दुओं में आम धारणा है कि सिख गुरुओं ने हथियार अपने धर्म की रक्षा के लिए उठाए थे और सिख धर्म के रक्षक हैं। दूसरी धारणा यह है कि सिख भारत की खड्गधारी भुजा हैं और वे सदियों से देश के लिए लड़ते रहे हैं। सिख गुरु हिन्दू थे और ज्यादातर सिख धर्म और देश की रक्षा के लिए हिन्दू परिवारों में से गए जवान थे। ऐसे सिखों में से कुछ लोग जब अलगाव का नारा देकर हिन्दुओं को मारने लगे और विदेशी मदद से खालिस्तान बनाने की कोशिश होने लगी तो हिन्दुओं को शक से ज्यादा दुःख हुआ। बेअंत और सतवत के हाथों इंदिरा गांधी की हत्या इसीलिए गैर-कांग्रेसी हिन्दुओं और गैर-हिन्दू भारतीयों को भी भारत और मूल मानवीय धर्म के साथ विश्वासघात लगता है।”

-प्रभाष जोशी

(सम्पादक जनसत्ता)

तूफान के दौर से पंजाब की भूमिका में

## अब स्वर्ण-मन्दिर में क्या करें?

जिस संयमपूर्ण रणनीति से सुरक्षाबलों ने स्वर्ण मन्दिर को आतंकवादियों से मुक्त कराया है, उसके कारण न केवल पंजाब की बल्कि सारे भारत की जनता ने राहत की सांस ली। आतंकवादियों ने अपनी ओर से पुनः सन् १९८४ की तरह वैसी ही परिस्थितियाँ पैदा कर दी थीं, जिनके कारण श्रीमती इन्दिरा गांधी को ब्लू स्टार आपरेशन की कार्यवाही करने के लिये बाधित होना पड़ा था। वैसे ही मई का उत्तरार्ध, भयंकर गर्मी का माहौल और 'ब्लू स्टार आपरेशन' की बरसी पर पांच जून के आसपास कुछ वैसा ही या उससे भी भयंकर हादसा करने की आतंकवादियों की तैयारी। ब्लू स्टार आपरेशन की कार्यवाही तो एक सोची-समझी और पूर्व नियोजित योजना का परिणाम थी, परन्तु इस बार ब्लैक-थंडर की कार्यवाही के पीछे वैसी कोई योजना नहीं थी। उसके लिये तो सरकार को जैसे बाधित होकर ही तुरत-फुरत कुछ निर्णय करने पड़े और सुरक्षाबलों ने उन निर्णयों को अत्यन्त धैर्य से कार्यान्वित किया। इस धैर्य के कारण सब आतंकवादियों के आत्मसमर्पण में १० दिन तो लग गये, परन्तु सुरक्षाबलों ने स्वर्ण-मन्दिर की परिक्रमा में प्रवेश किये बिना और हरमिंदर साहब पर एक भी गोली चलाये बिना अपने मिशन में सफलता प्राप्त की है। इसे छोटी उपलब्धि नहीं कहा जा सकता।

जिस तरह भिंडरावाले और उनके साथी अकालतख्त में जमकर बैठे थे, उसी तरह इस बार भी खूंखार आतंकवादी और खालिस्तान कमांडो फोर्स के अपने आपको सर्वे-सर्वा समझने वाले कारजसिंह ने बचे-खुचे आतंकवादियों को आत्मसमर्पण से रोकते हुए उन्हें हरमिंदर साहब में शरण लेने की सलाह दी। उनको आशा यही थी कि सुरक्षाबल हरमिंदर साहब पर गोलीबारी करेंगे तो इससे उनको अपने खालिस्तान की मांग का औचित्य सिद्ध करने का और सिख-जनता को भड़काने का सहज अवसर उपलब्ध हो जायेगा। परन्तु सुरक्षा-बल ने गोली नहीं चलाई। उसने केवल घेराबन्दी और चौकसी को दृढ़ से दृढ़तर बनाये रखा और यह स्थिति पैदा कर दी कि कोई आतंकवादी हरमिंदर साहब से बाहर न निकल सके। हरमिंदर साहब में न कोई खाने का इन्तज़ाम था, और न नित्यकर्म का। वह तो गुरु-ग्रन्थ-साहब को प्रतिष्ठित करने का पवित्र धाम था। इससे पहले कभी

किसी आतंकवादी ने हरमिंदर साहब को अपना शरण-स्थान नहीं बनाया था। परन्तु इन आतंकवादियों ने जिस उद्देश्य से वहां शरण ली वह उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। ये आतंकवादी हरमिंदर साहब के अन्दर ही शौच आदि करते रहे और दो तीन दिन तक खाने को कुछ न मिलने के कारण अन्त में बाधित होकर उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। इसी बीच कारजसिंह ने अपने अनुयायियों को बाहर फोन करके सारे पंजाब में भयंकर से भयंकर वारदातें करने का पैगाम दिया और जब आतंकवादियों ने हरमिंदर साहब के अन्दर सुरक्षाबलों के घेर्य के घेरे में फंस जाने के बाद आत्मसमर्पण करने का निश्चय कर ही लिया, तो कारजसिंह के पास साइनाइड खाकर आत्महत्या करने के सिवाय और कोई चारा नहीं बचा।

इस सारे कांड से जहां आतंकवादियों की अपराजयता (अजेयता) का तिलिस्म टूट गया, वहां अकाली-नेताओं की भी पोल पूरी तरह खुल गई। फिर चाहे वे बादल हों, रोड़े हों, या बरनाला हों। ये सबके सब स्वर्ण-मन्दिर की मर्यादा की पुनः स्थापना के लिये कफ़रू का उल्लंघन करके गिरफ्तारी देने को तो तैयार हो गये, परन्तु उनमें से किसी ने भी आतंकवादियों से आत्मसमर्पण करने की अपील नहीं की। आतंकवादी तो आतंकवादी, उनका तो कोई दीन-ईमान है नहीं परन्तु इन अकाली नेताओं का भी कोई दीन-ईमान नहीं है। वे एक ऐसी विचित्र मानसिकता के शिकार हो गये हैं जिसने उनको सच्चाई की तरफ से आंख मूंदकर केवल कायरता-पूर्ण स्वार्थमय राजनीति करने के सुविधाभोगी रास्ते पर डाल दिया है। वे स्वयं आतंकवादियों के विरोध में एक भी शब्द कहने को तैयार नहीं हैं और जब से आतंकवादियों ने स्वर्ण-मन्दिर पर अपना वर्चस्व कायम किया, तब से वे स्वर्ण-मन्दिर में जाने की हिम्मत तक नहीं कर पाये, परन्तु अब मर्यादा की रक्षा के नाम पर शेर बनना चाहते हैं। परन्तु अब सिख जनता भी समझ गई है कि इन शेरों के खोलों में दिल तो लोमड़ी का है, इसीलिये उसने इनका साथ नहीं दिया। चाहते तो यह भी यही थे कि किसी न किसी तरह स्वर्ण-मन्दिर आतंकवादियों से मुक्त हो, परन्तु वे इसकी सारी जिम्मेवारी सरकार पर डालते थे, जबकि अपनी ओर से इस सम्बन्ध में तिनका तक तोड़ने को तैयार नहीं थे। स्वर्ण-मन्दिर को आतंकवादियों से मुक्त करवाने के पश्चात् फिर वही लोमड़ी के दिल वाली मनोवृत्ति सामने आई है। सुरक्षाबलों ने शर्त रखी है कि स्वर्ण-मन्दिर शिरोमणि गुरुद्वारा कमेटी को तभी सौंपा जा सकता है, जब वे इस बात की लिखित गारन्टी दें कि भविष्य में कभी स्वर्ण-मन्दिर को आतंकवादियों का अड्डा नहीं बनने दिया जायेगा, न ही वहां हथियारों का जखीरा जमा किया जायेगा, और न ही स्वर्ण मन्दिर का प्रयोग राष्ट्रविरोधी कार्य के लिये किया जायेगा। परन्तु मुख्यग्रन्थी यह गारन्टी देने

को तैयार नहीं हैं। एक ओर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी स्वर्ण-मन्दिर पर अपना संवैधानिक अधिकार भी जताती है, और दूसरी ओर वह उस अधिकार के साथ आवश्यक रूप से आने वाली जिम्मेदारियों को संभालने को भी तैयार नहीं है। तो स्वर्ण-मन्दिर इन मुख्यग्रन्थियों के हवाले कैसे किया जाये? क्या हर वर्ष इसी तरह पुलिस को आतंकवादियों को निकालने के लिये अपने रण-कौशल और धैर्य की परीक्षा देनी होगी? यदि यह जिम्मेवारी सरकार या सुरक्षाबलों की ही है, तो सुरक्षाबल के अधिकारी ही मुख्यग्रन्थी क्यों न बनाये जायें।

हालांकि स्वर्ण-मन्दिर को आतंकवादियों से मुक्त कराने के बाद भी पंजाब के अन्य स्थानों पर भारी संख्या में निरीह लोगों की निर्मम हत्या करने का प्रेत नित्य ज़िन्दा है। अब यह आशा करनी चाहिये कि सुरक्षा-बल अपने बड़े हुए मनोबल के साथ शेष पंजाब को भी आतंकवादियों से मुक्त करके ही दम लेगा। यद्यपि यह कार्य इतना आसान नहीं है। परन्तु राष्ट्र-राज्य को और लोकतन्त्र को सुरक्षित रखना है तो इसके सिवाय कोई और गति भी नहीं है। अब स्वर्ण-मन्दिर की मर्यादा पुनः स्थापित हो गई है और श्रद्धालु भक्तों को भी वहां जाने की छूट मिल गई है। परन्तु स्वर्ण-मन्दिर में बारम्बार इस काण्ड की पुनरावृत्ति न हो, इसके लिये पूरी तरह सावधानी बरतनी पड़ेगी। कारसेवा के नाम से ट्रकों में जो हथियार छुपा कर ले जाये गये हैं, अब उनको बिना तलाशी के अन्दर नहीं जाने दिया जाये और किसी भी व्यक्ति को हथियार लेकर मन्दिर में न घुसने दिया जाये।

एक घाटक ने आतंकवादियों को समाप्त करने का एक सूत्र सुझाया है, उस सूत्र की चर्चा करने से पहले हम थाईलैण्ड की एक घटना का उल्लेख करना चाहते हैं। एक बार वहां की राजधानी बैंकाक में आधी रात को कुछ दुकानों में सैन्ध लगाकर चोरों ने चोरी कर ली। अगले दिन जब दुकानों के मालिकों ने अपनी दुकानों की हालत देखी, तब उन्होंने पुलिस में रिपोर्ट की। पुलिस ने आश्वासन देकर उनको विदा कर दिया, परन्तु अगली रात्रि को बाकी चार पांच दुकानों में फिर चोरी हो गई। तब जनता आतंकित हो गई और चोरी करने वाला यह गिरोह किन लोगों का है, इस पर तरह-तरह की चर्चाएं होने लगीं। आम अफवाह यह थी कि यह काम कुछ चीनी गुण्डों का है, जो इस काम में माहिर हैं। जब तीन चार दिन तक इसी प्रकार चोरियां होती रहीं तो एक दिन सवेरे जनता ने क्या देखा कि पांच चीनियों को पेड़ों पर फांसी पर लटका दिया गया है। ये चीनी जिनको फांसी पर लटकाया गया, उन्होंने ही चोरी की थी, इसका कोई सबूत नहीं था। न ही उन पर कभी किसी अदालत में मुकदमा चलाकर अपराधी साबित किया गया। परन्तु पांच चीनियों को फांसी पर लटकाने का परिणाम यह हुआ कि अगले

दिन से बैंकाक के बाजारों में चोरियां बन्द हो गईं। इसी तरह किसी पाठक ने आतंकवादियों को समाप्त करने का जो सूत्र दिया है, वह यही है कि जिस दिन जितने निहत्थे और निरपराध व्यक्ति मारे जाते हैं, उससे अगले दिन उस से दुगनी संख्या में आतंकवादियों को सरे-आम फांसी पर लटका दिया जाये। यह सुझाव निर्भम लग सकता है, परन्तु उड़ीसा और बिहार से मेहनत मजदूरी करने के लिये आये सर्वथा राजनीति से शून्य मजदूरों को अंधाधुंध गोलियों से उड़ाने वाले कितने दयालु हैं? यह भी कभी किसी ने सोचा है। जिस भिंडरावाले ने यह नारा दिया था कि एक सिख के हिस्से में केवल ३५ हिन्दू आयेंगे, तो क्या मोटरसाईकिल पर सवार हाथ में चीनी मन लिये एक आतंकवादी हजारों गोलियां चलाकर ३५ व्यक्तियों को भी नहीं मार सकता! यह गणित का हिसाब कितना सीधा है! उससे उल्टा हिसाब और भी अधिक सीधा है। गनीमत यही है कि भारत का जन-सामान्य कभी इस प्रकार की भिंडरावालीय परिभाषाओं में सोचने का आदी नहीं रहा, अन्यथा उड़ीसा और बिहार के मजदूरों को जिस बेरहमी से मारा गया है, उसकी प्रतिक्रिया उन प्रदेशों में कितनी भयंकर हो सकती थी?

हम शुरु से दो बातें कहते आये हैं। उन पर कभी ध्यान नहीं दिया गया। यदि अब भी उन पर विचारपूर्वक अमल किया जाये, तो स्वर्ण-मन्दिर की, आतंकवाद की और पंजाब की समस्या हल हो सकती है। हमारा पहला सुझाव यह है कि किसी सम्प्रदाय के नाम पर बनी किसी भी पार्टी को राजनीतिक मान्यता न दी जाये, और न ही उसे चुनाव लड़ने का अधिकार दिया जाये। यह भारत के संविधान के सैक्यूलरिज्म के सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल है। हमारी राजनीति में शुरु से ही यह भूल हो गई। कम से कम उसको अब तो सुधारा जा सकता है। मुस्लिम लीग और अकाली पार्टी सर्वथा अपने-अपने मतों पर आधारित साम्प्रदायिक पार्टी हैं। मुस्लिम लीग में किसी गैर-मुस्लिम को स्थान नहीं, और अकाली-पार्टी में किसी गैर-अकाली को। इसलिये इन दोनों पार्टियों की मान्यता संविधान के विरुद्ध है।

हमारा दूसरा सुझाव यह है कि गुरुद्वारा ऐंक्ट को बिल्कुल समाप्त किया जाये, और देश के सभी धर्मस्थानों के लिये कोई ऐसा कानून बनना चाहिये कि जो सब पर समान रूप से लागू हो। कभी मौलाना आज़ाद ने इसी प्रकार का सुझाव दिया था। अकालियों की सारी राजनीति इस गुरुद्वारा ऐंक्ट के मातहत और श्रद्धालु भक्तों द्वारा गुरुद्वारों में चढ़ाई गई भेंट-पूजा के रूप में करोड़ों रु० की राशि के आधार पर ही चलती है। यह नहीं भूलना चाहिये कि गुरुद्वारों में दी गई इस दान-राशि में गैर-सिखों का भी कम योगदान नहीं है। लेकिन उस दान का जैसा दुरुपयोग साम्प्रदायिक राजनीति को चलाने के लिये किया जाता है, वह सर्वविदित

है। अगर इन दो सुझावों पर अमल हो जाये तो न केवल स्वर्ण—मन्दिर, अकाली—दल या पंजाब की समस्या के समाधान का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा; बल्कि देश में भी असाम्प्रदायिक राजनीति की गुंजाइश बढ़ेगी।

२६ मई १९८८



“आनंदपुर साहिब प्रस्ताव पंजाब में हरित क्रांति से आई विपुलता के बाद आया! उसका इरादा पंजाब की विपुलता का देश में वितरण रोकना और उस पर अकाली कब्ज़ा कायम करना था। बेशक जाट—सिख—किसानों की मेहनत से हरित क्रांति हुई लेकिन क्या देश के साधनों और विकास की नीति के बिना वह हो जाती? क्या भाखड़ा—नांगल अकेले पंजाब ने बनाया था, या कि उसके लिए धन केन्द्र, अर्थात् सारे देश ने लगाया था? हरित—क्रांति के साधन पंजाब के नहीं पूरे देश के थे। लेकिन अकालियों ने ऐसा रवैया अपनाया जैसे उनकी निजी संपत्ति छीन कर कंगलों में बांटी जा रही हो।

धीरे—धीरे एक ऐसा वातावरण पंजाब में बना कि जो सिखों का है, वह तो धरोहर और योग्यता से उनका है ही; लेकिन जो वे चाह रहे हैं, उसे भी हंसी—खुशी न देना उनके साथ अन्याय है। यानि ‘चित भी मेरी, पट भी मेरी, और बंटा मेरे बाप का।’ संत भिंडरांवाले इसी रवैये को अपना कर हीरो बने। उनकी उद्दंडता और दंभ ने सिखों को बाकी हिन्दुस्तानियों से अपने को श्रेष्ठ मानने को प्रेरित किया। अब मामला यह था कि एक तरफ तो अकाली सिखों के खिलाफ हो रहे अत्याचारों और अन्याय पर छाती पीटते थे, और दूसरी तरफ संत भिंडरांवाले सिखों को चुनिंदा कौम बता कर आतंक की बंदूक के ज़रिए देश को कंपकंपाना चाहते थे।

ये दोनों रवैए साथ नहीं जा सकते थे, और इसीलिए खुशवंत सिंह सरीखे इतिहासकार को भी उस दिन मानना पड़ा कि सिखों के साथ आज़ाद भारत में न अत्याचार हुआ है, न भेदभाव; बल्कि वे जरा ज्यादा मिले प्यार—सम्मान से लड़िया गए हैं। खुद खुशवंत सिंह अगर स्वर्ण—मंदिर में सैनिक कार्यवाई से विवेक खो बैठे, तो इसीलिए कि वे भी उसे राष्ट्र से ऊपर मानते थे; और वहां से संत भिंडरांवाले और उनके मरजीवड़े जो भी कर रहे थे, उसे इतना धर्म—विरुद्ध नहीं मानते थे कि कार्यवाई के लिए कमर कस के तैयार हों। देश भर के हिन्दुओं और गैर—हिन्दू भारतीयों को जिस रवैए ने सबसे ज्यादा परेशान किया, वह यही था कि संत भिंडरांवाले और मरजीवड़े स्वर्ण मंदिर से और स्वर्ण मंदिर का चाहे जो करें, अकाली दल, शिरोमणी—कमेटी और प्रमुख—ग्रंथी कुछ न करते, और सिख समाज भी चुप रहता।”

—प्रभाष जोशी

(सम्पादक, ‘जनसत्ता’)

‘तूफान के दौर से पंजाब’ की भूमिका में



## सुभाषित

क्रोशन्त्यो यस्य वै राष्ट्राद् भ्रियन्ते तरसा स्त्रियः।

क्रोशतां पति-पुत्राणां मृतोऽसौ न स जीवति॥

— महाभारत

जिसके राज्य में आँसू बहाती हुई स्त्रियों का बलपूर्वक अपहरण किया जाता हो, उनके पति और पुत्रों तथा बच्चों को अकारण कत्ल कर दिया जाता हो और बचे हुए परिवार के लोग रोते-पीटते रह जाते हों, वह शासक नहीं, मुर्दा है। वह जीवित रहते हुए भी निर्जीव है, मृतक के समान है।

## पंजाब की सुध कौन लेगा?

पंजाब में हत्याओं का दौर जिस तरह जारी है उससे लगता है कि अब यह रोज़मर्रा की घटना होने के कारण मन को उद्वेलित नहीं करता। पहले कभी हत्याएं अपवाद रही होंगी, अब वह नियम बन गया है। क्या कोई एक दिन भी ऐसा बताया जा सकता है जब हत्या का यह चक्र बन्द हुआ हो? यदि अकस्मात् कोई दिन ऐसा गुज़र जाये, तो लोग सहसा विश्वास नहीं करेंगे। पंजाब, और बिना हत्याओं का दिन?

जब से सतवंत और केहर सिंह को इन्दिरा गांधी की हत्या के अभियोग में फांसी हुई है, तब से आतंकवादियों ने निरीह लोगों को फांसी पर भी लटकाना शुरू किया है। फांसी का जवाब फांसी। विचित्र तर्क है। दो व्यक्तियों को फांसी दी गई, इसीलिए आतंकवादी भी लोगों को फांसी देंगे? कोई सीमा भी होगी? नहीं, तर्क मत करिए। गोली से बात करने वाले तर्क की बात कभी नहीं सुनते। जिन लोगों को फांसी दी जा रही है, क्या सतवंत और केहर को फांसी देने में उनका कोई हाथ है? आप फिर तर्क करने लगे! हाथ हो, या न हो, इससे क्या? उन्हें तो निर्दोष लोगों को मारना है, इसी काम के लिए उन्हें प्रशिक्षित किया गया है। इसी काम के लिए हथियार दिए गए हैं। इसी काम के लिए उन्हें ऐश के सब सामान दिए जाते हैं। वे अपनी गांठ की अकल के पाबन्द नहीं, किसी अन्य की गांठ की अकल के पाबन्द हैं।

यदि अकल और तर्क की बात करनी हो, तो केवल एक ही बात की जा सकती है। ये आतंकवादी सिख नहीं हो सकते। यह तो सभी ग्रन्थी साहेबान और सिख

नेता आए दिन कहते ही रहते हैं। अभी श्री बरनाला से पूछा गया कि इन आतंकवादियों के विरुद्ध हुक्मनामा जारी क्यों नहीं होता? तो उन्होंने मासूमियत से जवाब दिया कि उन पर हुक्मनामे का भी कोई असर होने वाला नहीं। मान लिया। पर यदि सिंह साहेबान हुक्मनामा जारी कर देते, तो वे अपनी ओर से सुर्ख-रू हो जाते। अपने कर्तव्य का पालन तो करते। आपके दिल की सफाई तो उजागर हो जाती। फिर जब आतंकवादियों को आप मानते हैं कि वे सिख नहीं हो सकते, भले ही सिख वेश में ही वे ये हत्याएं करते हों, फिर आपको हुक्मनामा जारी करने में कठिनाई क्या है? सीधा क्यों नहीं कहते कि आपको स्वयं भी तो अपनी जान प्यारी है। जिस दिन आप हुक्मनामा जारी करेंगे, उसी दिन.....

तर्क का तकाज़ा तो केवल एक ही है। ये आतंकवादी सिख न सही, पर हत्यारे तो हैं ही। आप भी मानते हैं, ये निर्दोष लोगों की हत्याएं करते हैं और निर्दोषों को ही फांसी देते हैं। इस नृशंसता में स्त्रियों और बच्चों को भी नहीं छोड़ते। किसी सदोष व्यक्ति की हत्या करने वाले को भी कानून अपने हाथ में लेने के अपराध में सीधी फांसी की ही सजा मिलती है। फिर रोज़ समाचार-पत्रों, दूरदर्शन और आकाशवाणी पर ये समाचार क्यों आते हैं कि आज इतने आतंकवादी पकड़े गये आज इतने। इन हत्यारों को भी गिरफ्तार करने की क्या जरूरत है, उन्हें सीधा सरेबाज़ार फांसी पर क्यों नहीं लटकाया जाता? फांसी का जवाब फांसी ही तो होता है। यह है तर्क का तकाज़ा। यह है वह इन्साफ जो इन हत्यारों को दिया जाना चाहिए।

रिबैरो के समय कहा जाता था कि आतंकवादियों की संख्या कुल मिलकर ३००, ४०० ही है, ५०० से बढ़कर किसी भी हालत में नहीं है। सरदार खुशवंत सिंह जैसे पत्रकार भी यही बात कहते थे। परन्तु अब सिद्धार्थशंकर राय और गिल के नेतृत्व में रोज़ समाचार आते हैं कि आज १० आतंकवादी पकड़े गए, आज १५ आतंकवादी पकड़े गए। रोज़ १०-१५ करते-करते भी अभी तक वह तीन-सौ चार-सौ की संख्या पूरी नहीं हुई? वह कौनसा रक्तबीज है जिससे रोज़ नए-नए आतंकवादी पैदा होते चले जाते हैं?

तभी एक अमरीकी अखबार यह सूचना देता है कि जनरल ज़िया ने पाकिस्तान के अन्दर दस हज़ार आतंकवादियों को प्रशिक्षित किया था। उन्हें आधुनिक हथियार मुहैया किए थे और उन्हें नियमित रूप से पैसा दिया जाता था। इन प्रशिक्षित दस हज़ार आतंकवादियों में दो हज़ार व्यक्ति ऐसे भी थे जिन्हें काफी एडवांस सैनिक प्रशिक्षण दिया गया था, जिसकी असली सार्थकता आगामी संभावित भारत-पाक युद्ध के समय होगी। अभी अफगानिस्तान से सोवियत सेना की वापसी पर पाकिस्तान के राष्ट्रपति ने जिस प्रकार पाकिस्तान-अफगानिस्तान का एक संघ बनाने की

मंशा प्रकट की है और अफगानिस्तान की राजधानी के निकटवर्ती प्रदेशों में पाकिस्तानी सैनिकों ने मोर्चाबन्दी कर ली है, ताकि सोवियत सेना के जाते ही काबुल पर हमला करके उस पर कब्ज़ा कर लिया जाए, और नजीब की सोवियत-समर्थक सरकार गिराकर पाक-समर्थक सरकार बनाई जाए; ऐसा ही स्वप्न तो जनरल ज़िया ने भी लिया था, अफगानिस्तान के बारे में भी और तथाकथित खालिस्तान के बारे में भी। ज़िया नहीं रहे, पर अमरीका की शह से यह सपना अभी जीवित है।

उधर ईरान अपना दांव लगाए बैठा है। वह सोचता है कि सोवियत सेना के हटते ही वह अपना वर्चस्व अफगानिस्तान पर स्थापित करे। पाकिस्तान और ईरान की यह राजनीतिक महत्वाकांक्षा ही दोनों देशों के विद्रोही मुजाहिदीनों में समझौता नहीं होने देती। डाकुओं और हत्यारों में सदा लूट के माल पर ही झगड़ा होता है।

ऊपर हमने अमरीकी शह का संकेत किया है। जेनेवा-समझौते को स्वीकार करके भी अमरीका और पाकिस्तान दोनों ही अफगान-विद्रोहियों को हथियार देने से बाज़ आने को तैयार नहीं। अफगानिस्तान और पाकिस्तान दोनों का सम्मिलित एकच्छत्र तानाशाह बनने का जैसा स्वप्न अमरीका ने जनरल ज़िया के दिमाग में भरा था, क्या वैसा ही स्वप्न वर्तमान पाकिस्तान सेनापति असलम बेग के मन में भी भरा है? कौन जाने! बेचारी बेनज़ीर! वह भी असलम बेग को नकार कर नहीं चल सकती। फौजी तानाशाही पाकिस्तान का पर्याय बन चुकी है, उसे नकार कर कोई शासक पाकिस्तान में कब तक चल सकता है? बेनज़ीर भी तो मजबूर है। चुनाव के समय जिसे 'चारों सूबों की जंजीर, बेनज़ीर-बेनज़ीर' कह कर पुकारा गया उस बेनज़ीर के पांवों में भी तो जंजीर है।

भारत सरकार ने पंजाब में पैप्सी-योजना को मंजूरी दी है। पंजाब की बरनाला सरकार और वहां की राजनीति पर हावी हरित क्रान्ति के नवधनाद्यों ने भी इस बहुराष्ट्रीय उद्यम का समर्थन किया है और पैप्सी योजना के माध्यम से पंजाब की (अर्थात् चन्द धनी किसानों की) खुशहाली का स्वप्न देखा है। पर बहुराष्ट्रीय उद्यम किस प्रकार अमरीकी गुप्तचर विभाग (सी० आई० ए०) का अड़्डा बन जाता है, और वह किस तरह स्थानीय सरकारों को उलटने का षड्यंत्र रचता है—यह बात अब अविदित नहीं है। पिछले दिनों एशियाई मामलों के विशेषज्ञ प्रसिद्ध अमरीकी राजनयिक सोलार्स को अमृतसर के स्वर्णमन्दिर में सरोपा भेंट किया गया, और उन्होंने मुख्य ग्रन्थियों से देर तक गुप्त वार्तालाप भी किया। उससे भी मन में यह शंका होती है कि कहीं खालिस्तान के निर्माण का यह कोई नया षड्यंत्र तो नहीं है?

आतंकवादियों की दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती हरकतें, पाकिस्तान द्वारा दस हजार आतंकवादियों को प्रशिक्षण, अफगानिस्तान से सोवियत सेना की वापसी के बाद का घटना-चक्र, पैप्सी-योजना की स्वीकृति और सोलार्स की यात्रा, इन सबको मिलाकर देखिए और फिर पंजाब के भविष्य के बारे में सोचिए।

पंजाब की सुध कौन लेगा?

१६ फरवरी १९८६



जिन सिखों के विश्वास की चूलें हिल गई हैं, उनसे बात कीजिए तो इंदिरा गांधी की हत्या को वे न टाले जा सकने वाले एक तथ्य की तरह बता कर सिखों पर हुए अत्याचार पर आ जाते हैं। सुनकर दुःख होता है कि ३१ अक्टूबर से ४ नवम्बर तक के दंगों ने उन्हें किस बुरी तरह झिंझोड़ दिया है और आमतौर पर विश्वास और उत्साह से बलबलाने वाले लोग किस कदर भयभीत हैं। इन लोगों का पंजाब और दोगली अकाली राजनीति से बरसों से रिश्ता कटा हुआ है। ये सिख जरूर हैं, लेकिन किसी पंजाबी हिन्दू से भी कम पंजाबी हैं। फिर क्यों वे अपने गैर-पंजाबी परिवेश और जड़ों को छोड़ कर पंजाब जाने की बात करते हैं? क्या उन्हें ढांडस बंधाने और फिर से बसाने के लिए शिरोमणि कमेटी, अकाली दल और पंजाब के रईस जाट सिख आगे आ रहे हैं? एक गैर जाट और मध्यप्रदेशी सिख ने मुझे बताया कि पंजाब के बाहर के सिखों का एक जत्था संत भिंडरांवाले से मिलने गया था। इस जत्थे ने संत जी से कहा था कि पंजाब में वे जो कर रहे हैं, उससे अपने शहर, गांव और प्रांत में उनकी हालत खराब होती है। अगर उनके साथ भी हिन्दू वही करने लगे जो हिन्दुओं के साथ पंजाब में संतजी के मरजीवड़े कर रहे हैं तो वे क्या करेंगे? संतजी ने कहा कि बाहर के इन सिखों के लिए वे अंतिम अरदास करेंगे।

-प्रभाष जोशी

(सम्पादक 'जनसत्ता')

'तूफान के दौर से पंजाब की भूमिका में'

## सुभाषित

प्रत्यक्षाप्तोपदेशाभ्यामनुमानेन वा पुनः।  
बोद्धव्यं सततं राज्ञा देश-वृत्तं शुभाशुभम्॥  
चारैः कर्म-प्रवृत्त्या च तद्-विज्ञाय विचारयेत्।  
अशुभं निर्हरेत् सद्यो जोषयेच्छुभमात्मनः॥

महाभारत, अ. १४५

प्रत्यक्ष देखकर, विश्वसनीय पुरुषों से जानकारी लेकर अथवा युक्तियुक्त अनुमान करके शासक को सदा देश के शुभ-अशुभ का हाल जानते रहना चाहिए। गुप्तचरों द्वारा और देश में हो रही हलचलों से शुभ और अशुभ स्थिति का आकलन करके शासक को अशुभ शक्ति का तत्काल निवारण करना चाहिए और अपने लिए शुभ स्थिति लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

## पंजाब की समस्या कैसे सुलझे?

पंजाब की समस्या को अभी तक सदा गलत ढंग से समझने का प्रयत्न किया गया है, इसीलिए वह दिन प्रतिदिन और उलझती जाती है। पंजाब की समस्या को केवल सिखों की समस्या मान कर सदा उन्हीं को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है, इसी से 'करेला और नीमचढ़ा' की स्थिति बनती जाती है। पंजाब में शोर तो सदा सिखों के साथ ज्यादाती का मचाया जाता है, पर असल में ज्यादाती तो वहां गैर-सिखों के साथ ही होती है, और सरकार उसी ओर से आंखें बन्द किये है। समग्र देश में हिन्दुओं का बहुमत होते हुए भी जब उनकी उपेक्षा होती है, तब पंजाब में तो हिन्दू अल्पसंख्यक हैं ही, फिर उनकी उपेक्षा का क्या ठिकाना! वास्तव में हिन्दू चाहे अल्पसंख्यक हों, चाहे बहुसंख्यक, सरकार और राजनेताओं की दृष्टि में वे अस्तित्व-शून्य हैं, क्योंकि वे कहीं भी मुखर नहीं हैं, इसीलिए सर्वत्र उपेक्षा उन्हीं की होती है। यदि किसी अन्य वर्ग में मोगा जैसा हत्याकाण्ड हो जाता तो उसकी कितनी तीव्र प्रतिक्रिया होती, जरा सोचकर देखिए।

पंजाब में सरकार की तुष्टीकरण की नीति का मुंह मोड़ने के लिए, तथा पंजाब में हिन्दुओं की दिन-प्रतिदिन बिगड़ रही व्यवस्था के बारे में जागृति पैदा करने के लिए राष्ट्रीय-हिन्दू-मंच कुछ समय से अभियान चला रहा है। इसी संदर्भ में कम से कम १०० हिन्दू-संस्थाओं से निम्नलिखित प्रस्ताव का समर्थन करवाकर सामूहिक रूप से प्रधानमंत्री को भेजने का निर्णय किया है। समस्त आर्य-समाजों

और आर्य-संस्थाओं से भी अनुरोध है कि वे इस प्रस्ताव का समर्थन कर इस समस्या के समाधान में सहयोग दें। इस बीस-सूत्री प्रस्ताव का प्रारूप इस प्रकार है:

१. जिस थाने में हत्याएं, लूटमार तथा हिंसक वारदातें पाई जाएं, उस थाने के थानेदार तथा अर्द्धसैनिक दल के अधिकारी को तुरन्त निलंबित किया जाए।
२. पंजाब के सभी गांवों, कस्बों तथा शहरों में सभी वर्ग के नागरिकों के सुरक्षा-दस्ते बनाये जायें, जिन्हें आधुनिकतम शस्त्र दिये जाएं, जिससे आतंकवादियों का मुकाबला करने में सभी नागरिक भागीदार बन सकें।
३. आतंकग्रस्त ज़िले फ़ौज के हवाले कर दिये जाएं। सेना को पूर्ण स्वतंत्रता हो कि वह प्रत्येक गांव, फार्म-हाऊस तथा अन्य संदिग्ध स्थानों की तलाशी ले सके।
४. पाकिस्तान से मिलती, सारी सीमा के साथ-साथ १० मील का क्षेत्र खाली कराया जाए, जहां हरियाणा, उ० प्र० तथा राजस्थान के सेवा-निवृत्त सैनिकों और किसान-परिवारों को बसाया जाए। उन्हें अपनी सुरक्षा के लिए उपयुक्त आधुनिक शस्त्र दिये जाएं।
५. पंजाब में भय के वातावरण को हटाने के लिए तथा हिन्दुओं में आत्मविश्वास तथा सुरक्षा की भावना जगाने के लिए पंजाब, हरियाणा तथा दिल्ली के सभी नागरिकों को, तीन-फुटी तलवार रखने का समान अधिकार दिया जाए। इसके लिए शस्त्र-कानून में परिवर्तन किया जाए।
६. पंजाब के १५ से ३५ वर्ष तक के सभी नागरिकों के लिए सैनिक शिक्षा अनिवार्य की जाए। अबोहर, फ़ाजिल्का तथा चण्डीगढ़ एवं नदियों के पानी के वितरण के विवाद को बिना पहले के समझौते की पाबंदी के, निर्णय के लिए सर्वोच्च न्यायालय के सुपुर्द किया जाए।
७. किसी भी गुरुद्वारे में आतंकवादियों को शरण देने के लिए गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के सदस्यों तथा जत्थेदारों को भी दोषी समझा जाए तथा उनके खिलाफ़ भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत कार्यवाही की जाए।
८. किसी भी गुरुद्वारे में लाइसेंस के बिना शस्त्र रखने की इजाज़त न हो। गुरुद्वारों में बिना लाइसेंस शस्त्र रखने के आरोप में गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के सदस्यों तथा जत्थेदारों को भी दोषी माना जाए।
९. सरकार पंजाब-समस्या के बारे में एक लक्ष्मण रेखा खींचे और घोषित करे कि देश की एकता व अखंडता को कमजोर करने वाली सिख नेताओं की किसी भी मांग को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं किया जाएगा।

१०. सरकार व अकाली नेता यह घोषित करें कि पंजाब में हिन्दुओं को जीवित रहने और सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का अधिकार है, तथा उन्हें सार्वजनिक रूप से पूजा-पाठ, संध्या-हवन, कीर्तन-जागरण, अखंड-पाठ का आयोजन करने एवं श्रीराम-नवमी, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, रामायण तथा महाभारत का धारावाहिक देखने तथा दशहरा व दीवाली मनाने, होली खेलने का पूरा अधिकार है।
११. सरकार उस पंजाब-सिख-गुरुद्वारा-ऐक्ट को निरस्त करे, जिससे सिखों को गुरुद्वारों के प्रबन्ध में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है।
१२. हिन्दी को पंजाब में द्वितीय भाषा घोषित किया जाए।
१३. पंजाब से विस्थापित सभी हिन्दू परिवारों को, जो पंजाब तथा दिल्ली के शरणार्थी शिविरों में दिन काट रहे हैं, तथा जो देश के अन्य स्थानों में भटक रहे हैं, उनके रहन-सहन, रोज़गार, स्वास्थ्य-सेवा तथा उनके बच्चों की शिक्षा का सरकार उसी स्तर पर प्रबन्ध करे कि वह पंजाब के सभी हिन्दू-विस्थापितों को तथा अन्य सम्प्रदायों के विस्थापित लोगों को उनके अपने गांवों, घरों, कस्बों, शहरों में पुनः बसायेगी, उन्हें पूर्ण सुरक्षा की गारन्टी दे, उनकी सम्पत्तियों को वापस दिलाए।
१४. पंजाब-पुलिस में हिन्दुओं का अनुपात जनसंख्या के आधार पर हो, जिससे हिन्दुओं का मनोबल बढ़ सके।
१५. पंजाब-समस्या के बारे में अकाली दल तथा अन्य राजनैतिक दलों के अतिरिक्त, पंजाब के हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए आर्य समाज, सनातन धर्म सभा तथा शिवसेना के प्रतिनिधियों को अवश्य बुलाएं, क्योंकि वास्तविक समस्या तो हिन्दुओं के जीवन, मृत्यु और भविष्य की ही है।
१६. हिन्दुओं के सभी मन्दिरों व मठों को, जिन पर सिख उग्रवादियों ने बल-पूर्वक कब्ज़ा कर लिया है, वापस दिलाने के लिए सरकार कदम उठाए।
१७. हिन्दुओं के मन्दिरों और मठों के पुजारी व महन्तों तथा इनसे सम्बन्धित सभी जनों की सुरक्षा की सरकार व्यवस्था करे।
१८. हिन्दुओं को शिक्षा, रोज़गार, पदोन्नति तथा लाइसेंस आदि देने में सिखों के समान अधिकार दिये जाएं।
१९. सिख आतंकवादियों की गोलियों से समाचार-पत्रों की जो स्वतंत्रता खतरे में पड़ गई है, उसे सरकार पूर्ण रूप से बहाल करे।

२०. पंजाब में जीवन-सुरक्षा के साथ-साथ वैचारिक स्वतंत्रता को स्थापित करने के लिए भी सरकार आवश्यक कदम उठाए।

पुनः सभी आर्य-संस्थाओं से अनुरोध है कि वे इस बीस-सूत्री प्रस्ताव का समर्थन करके अपने हस्ताक्षरों सहित समर्थन-पत्र राष्ट्रीय हिन्दू मंच के कार्यालय में भेजें।

६ जुलाई १९८६



### तीन प्रश्न

एक विदेशी ने एक जापानी विद्यार्थी से पूछा— “तुम संसार का सबसे बड़ा महापुरुष किसे मानते हो?”

विद्यार्थी ने उत्तर दिया— “महात्मा बुद्ध को”।

विदेशी ने दूसरा प्रश्न किया— “अगर कोई महात्मा बुद्ध पर हमला करे तो तुम क्या करोगे?”

“हम उसका सिर काट देंगे”— विद्यार्थी का उत्तर था।

तीसरा प्रश्न— “यदि महात्मा बुद्ध जापान पर हमला करें तब तुम क्या करोगे?”

बेझिझक उत्तर था— “हम महात्मा बुद्ध का सिर काट देंगे।”



## सुभाषित

अभिमुखनिहतस्य सतस्तिष्ठतु तावज्जयोऽथवा स्वर्गः।

उभयबलसाधुवादः श्रवणसुखोऽसौ बतात्यर्थम्॥

— भर्तृहरि (नीतिशतक)

रण में शूर विजय पाता है अथवा स्वर्ग, तजो यह बात।

दोनों पक्षों का बल—वर्णन ही होता है सुखप्रद बात॥

## कश्मीर में हिन्दुओं का अस्तित्व

२६ जनवरी को गणराज्य दिवस की धूमधाम में देश की सारी जनता उल्लास और हर्ष के सोपान पर इस तरह आरुढ़ रही जैसे कि देश के किसी भाग में धधक रही किसी भयंकर त्रासदी की ओर उसका कोई ध्यान ही न हो। परन्तु तथ्यों से आंखें मूंदने पर तथ्य समाप्त नहीं हो जाते।

पिछले दिनों कश्मीर के हिन्दुओं का जो शिष्टमण्डल दिल्ली आया था, उससे बातचीत करने पर इस सीमांतवर्ती सुन्दर स्वर्गोपम घाटी की जो स्थिति सामने आई, वह किसी भी नरककुण्ड से बदतर थी। शिष्टमण्डल ने बताया कि कश्मीर में कानून और व्यवस्था की स्थापना के लिये जो भी प्रयत्न किये जा रहे हैं, वे सब न केवल विफल हो रहे हैं, बल्कि वहां ज्वालामुखी का लावा बाहर निकलकर अपनी विध्वंसकारी लहरों से चारों तरफ कहर ढहाता चला जा रहा है। वहां प्रशासन नाम की कोई चीज़ नहीं रही है और जनता को प्रशासन की क्षमता पर भी भरोसा नहीं रहा है। पुलिस और सुरक्षा—बल का मनोबल इतना गिर गया है कि वे भी आतंकवादियों को गिरफ्तार करने की बजाय उनको सलाम बजाने में ही अपनी खैर समझते हैं और प्रशासन के विरुद्ध विद्रोह करने पर भी आमादा हैं।

कश्मीर की इस स्थिति का आकलन ज़रा इस पहलू से भी करिए कि आज्ञाद कश्मीर के नेता अब्दुल कयूम खां यह घोषणा कर रहे हैं कि कश्मीर के अपने भाइयों पर भारत सरकार के अत्याचारों को हम चुप होकर देर तक देखते नहीं रह सकते, चाहे जब उनकी सहायता के लिये युद्ध—विराम की रेखा पार करके हम मुक्ति—युद्ध में सहयोग दे सकते हैं। इसी धमकी के साथ हाल में ही पाकिस्तान के विदेश मंत्री साहिबज़ादा याकूब खां जो धमकी दे गये हैं, उसको भी जोड़ लीजिए,

और तब स्थिति की गंभीरता को समझने का प्रयत्न करिए। याकूब खां से जब यह कहा गया कि पाकिस्तान आतंकवादियों को हथियार और प्रशिक्षण देकर भारत के आन्तरिक मामलों में दखल दे रहा है तो इसका खण्डन करने की हिम्मत तो उनकी नहीं हुई, पर केवल यह कहकर उन्होंने सन्तोष कर लिया कि मैं अपनी सरकार से आप की बात कह दूंगा। पर साथ ही यह धमकी भी दे दी कि कश्मीर की इस समय जैसी विचित्र स्थिति हो रही है, उसके कारण पाकिस्तान का एक वर्ग सन् १९६५ वाली स्थिति पुनः पैदा करना चाहता है और सन् १९७१ का बदला भी लेने की बात पाकिस्तान की जनता के मन से गई नहीं है।

सन् ६५ की बात आई तो तब की और अब की स्थिति में एक अन्तर को भी साफ़-साफ़ समझना चाहिए कि उस समय पाकिस्तान ने उन मुजाहिदीनों को कश्मीर की घाटी में घुसपैठ करने के लिये भेजा था, जिनकी घाटी की जनता में कहीं जड़ नहीं थी। उस समय कश्मीर की जनता भारत सरकार के साथ थी, इसलिये उनसे आसानी से निपटा जा सका। परन्तु इस बार जो आतंकवादी सारी घाटी पर हावी हो रहे हैं वे स्वयं कश्मीर के ही हैं, उन्हें पाकिस्तान ने कश्मीर सरकार की लापरवाही देखते हुए आमन्त्रित किया और सैकड़ों की संख्या में उन्हें हथियार और प्रशिक्षण देकर वापस कश्मीर भेज दिया है। ये अपने घरों में रहते हैं और पाकिस्तान से मिले आधुनिक हथियारों का मनमाना उपयोग करते हैं।

रही बात सन् १९७१ की। उस समय पाकिस्तान की बेवकूफी से उसके पूर्वी हिस्से में संकट पैदा हुआ था। परन्तु इस बार पाकिस्तान की निजी मूर्खता की बजाय उसका अहम् जो अमरीका द्वारा दिये गये अत्याधुनिक हथियारों से और बढ़ गया है, सातवें आसमान पर है। इसके अतिरिक्त अफगानिस्तान से रूसी सेना हट जाने के बाद और स्वयं सोवियत संघ में ही सरकार-विरोधी आन्दोलनों में उसके बुरी तरह फंसे होने के कारण वह भारत की सहायता के लिये दौड़ कर आ भी नहीं सकता। इस दृष्टि से भी पाकिस्तान को चिड़िया की आंख की तरह केवल एक—मात्र लक्ष्य कश्मीर ही दिखाई देता है। इसलिए यदि वह आगामी किसी दिन कोई दुस्साहस कर बैठे तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

तभी यह भी ध्यान आता है कि सन् १९६५ की लड़ाई में कश्मीर के जिन पर्वत-शिखरों पर हमारी सेना के बहादुर जवानों ने अमर बलिदानों के द्वारा विजय प्राप्त करके सैनिक दृष्टि से अपनी स्थिति मजबूत कर ली थी, उन्हीं शिखरों को रूस के दबाव में आकर छोड़ देने पर हमसे कितनी बड़ी गलती हो गई। इस समय ऐसा लगता है कि कश्मीर से लेकर फिरोज़पुर और अटारी तक पूरी सीमा पर एक बिजली का तार बिछा हुआ है और उस तार को छूते ही चाहे जब भयंकर विस्फोट हो सकता है। दिवाली के मौके पर बच्चे छोटे-छोटे पटाखे छोड़ते हैं।

वे पटाखे किसी दुकान या घर में बन्द होने पर सैकड़ों सालों तक सुरक्षित रह सकते हैं। परन्तु एक बार एक पटाखे को दियासलाई दिखाने पर एक के बाद एक पटाखों की पूरी लड़ी ही बिना सुलगे नहीं रह सकती। अब दियासलाई उन पटाखों के और नजदीक आ गई है।

हम हिन्दुओं के अस्तित्व की बात कह रहे थे। जिस शिष्टमण्डल की चर्चा हमने ऊपर की है, उसी ने बताया कि यों कश्मीर के हिन्दू और मुसलमान सदियों तक आपस में भाईचारे और सह-अस्तित्व के नाते आराम से रहते आये, परन्तु अब आतंकवादियों की नई पीढ़ी आ जाने पर सारे समीकरण बदल गये हैं, और उसका शिकार वहां के हिन्दुओं को होना पड़ता है। शिष्टमण्डल ने बताया कि कर्फ्यू लागू होने पर भी आतंकवादी इसका उल्लंघन करके जलूस निकालते हैं और जलूस के आगे-आगे अपने पड़ोसी हिन्दुओं को बन्दूक की नोक पर चलने के लिये बाध्य करते हैं और साथ ही यह भी कहते हैं कि हमारे साथ मिलकर नारे लगाओ "हिन्दुस्तानी कुत्तो, यहां से भाग जाओ।" ऐसी हालत में अगर पुलिस की या सेना की गोली चलेगी तो सबसे पहले जलूस के आगे चलने वाले वे हिन्दू ही मारे जायेंगे, और यदि वे जलूस के आगे चलने से इंकार कर दें तो आतंकवादी उनको अपनी गोली का निशाना बना देंगे।

यह ठीक वैसी ही रणनीति है जैसी कि मुस्लिम हमलावर भारत पर आक्रमण के समय अपनी फौजों के आगे गायों को खड़ा कर देते थे, और यह समझते थे कि हिन्दुओं के मन में गोमाता के प्रति असीम श्रद्धा और पूजा का भाव है, इसीलिये वे गायों पर हथियार नहीं चलायेंगे। हिन्दुओं से बढ़कर निरीह गाय दुनिया में और कहां मिलेगी?

इस मुस्लिम-बहुसंख्यक-प्रदेश में जब तक नेशनल कांफ्रेंस का कुछ ज़ोर रहा और उसमें राष्ट्रवादी मुसलमानों की पूछ रही तब तक तो भाई-चारा आराम से निम गया, परन्तु अब वहां कोई भी राजनीतिक पार्टी या राजनैतिक नेता इस स्तर का नहीं बचा जिस पर कश्मीर की जनता विश्वास कर सके, या जो कश्मीर की जनता को अपने विश्वास में ले सके। नये बने राज्यपाल श्री जगमोहन प्रशासन में कुशल हैं उनका पिछला रिकार्ड भी बहुत अच्छा है कश्मीर की जनता ने उनके पहले किये गये कार्यों को सराहा भी है, परन्तु इस समय उनके वे सारे गुण व्यर्थ हो रहे हैं, क्योंकि आतंकवाद सिवाय गोली के और कोई भाषा नहीं समझता। इधर हमारे प्रधानमंत्री या गृहमंत्री कश्मीर की समस्या सुलझाने के लिये सर्वदलीय बैठक बुलाना चाहते हैं, और उससे पहले आतंकवादियों के तुष्टीकरण के लिये सब प्रकार के प्रबन्ध कर रहे हैं। परन्तु उनको सरकार के द्वारा दी जाने वाली सहायता में कोई रुचि नहीं है। सर्वदलीय बैठक भी क्या करेगी जब सरकार के

सामने ही कार्य की कोई सही दिशा नहीं है। सर्वदलीय बैठक तो इसलिये बुलाई जाती है कि सरकार के मन में जो योजना है उसे अन्य दलों के सामने पेश करके उनकी सहमति ली जाये, परन्तु यहां तो किसी योजना का ही अभाव है।

कश्मीर की यह स्थिति एक दिन में नहीं हुई। पिछले कई सालों से जो गलतियां हम से होती आई हैं, उन्हीं का यह दण्ड इस समय देश को भोगना पड़ रहा है। आम जनता यह समझती है कि नेहरू जी ने कश्मीर के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र संघ में भेजकर बड़ी गलती की थी। पर हम इसे उनकी दिव्यता समझते हैं। इसका खुलासा हम किसी और समय करेंगे। परन्तु नेहरू जी की सबसे बड़ी गलती हम कश्मीर के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र संघ में भेजने के बजाय यह मानते हैं कि उन्होंने कश्मीर के मुस्लिम-चरित्र को बदलने का कभी प्रयत्न नहीं किया, जो कि राजनीति का सबसे बड़ा तकाजा होना चाहिए था। वह जोर-जबरदस्ती से नहीं, बल्कि एक बहुत धीमी और एक सतत प्रतिक्रिया होती, जो कोई दूरदर्शी और धैर्यशाली राजनीतिज्ञ ही कर सकता था। नेहरू जी की दार्शनिकता में वह राजनैतिक कौशल नहीं था जो सरदार पटेल में था। इसलिये सरदार पटेल ने जूनागढ़, भोपाल और हैदराबाद जैसी मुस्लिम-साम्प्रदायिकता की वाहक रियासतों को भारत-संघ में विलय करने के पश्चात् अपने प्रशासनिक कौशल से उनके मुस्लिम-चरित्र को ध्वस्त कर दिया। परन्तु नेहरू मन में कश्मीरी होने का मोह कश्मीर के बारे में वैसी नीति अपनाने की बात नहीं सोच सका, और वही नीति अब कश्मीर के हिन्दुओं के लिए सबसे बड़े संकट का कारण बन गई।

कश्मीर में हिन्दुओं का अस्तित्व इस स्थिति में कब तक और कितना रहेगा—यह देशवासियों के लिये केवल वैचारिक विलास का नहीं, बल्कि गम्भीर चिन्ता का विषय होना चाहिये।

४ फरवरी १९६०



कश्मीर मूलतः हिन्दू संस्कृति का केन्द्र रहा है। इस्लाम का आगमन महाकाव्य में क्षेपक की तरह है। क्षेपक निकाल देने पर महाकाव्य का शुद्ध रूप सामने आ जाएगा। पर युग ऐसा आ गया है कि क्षेपक ही पूरे महाकाव्य पर हावी हो चला है। युग का ही प्रभाव है कि कश्मीर का सूफीवाद भी आतंकवाद में बदल गया है। अब कश्मीर से जिस तरह हिन्दुओं को भारी संख्या में पलायन कर शरणार्थी बनकर दर-दर भटकना पड़ रहा है, उस त्रासदी ने सारे पुराने समीकरण बदल दिए हैं।

- 'कश्मीर: झुलसता स्वर्ग', पूर्वकथन

पूर्व-कथन पृष्ठ ५

## सुभाषित

बालस्यापि रवेः पादाः पतन्त्युपरि भूयताम्।

तेजसा सह जातानां वयः कुत्रोपयुज्यते।।

यथायथैव स्नेहेन भूयिष्ठमुपचर्यते।

धत्ते तथा तथा तापं महावैश्वानरः खलः।।

प्रातःकालीन सूर्य के किरण—चरण भी पहाड़ों के शिखर पर पड़ते हैं। जो तेज के साथ पैदा होते हैं, उनकी आयु कहीं नहीं देखी जाती।

जितना—जितना भी थिकनाई रूपी स्नेह से अधिकाधिक आदर—सत्कार करते हो, वह उतना—उतना ही ताप धारण करता जाता है -- आतंकवादी दुष्ट तो भयंकर अग्नि—पुंज है।

## राजीव गांधी की हत्या से सबक

भारत के पूर्व प्रधानमंत्री और इंडा के अध्यक्ष राजीव गांधी की जिस बर्बरतापूर्ण ढंग से हत्या की गई, उसने सारे राष्ट्र को ही विचलित कर दिया है। उनकी अन्त्येष्टि में जिस प्रकार साठ देशों के वरिष्ठ व्यक्तियों ने शामिल होकर अपनी श्रद्धांजलि और शोक व्यक्त किया है, वैसा शायद ही किसी ऐसे अन्य व्यक्ति के लिए सम्मान प्रकट किया गया, जो सत्तासीन नहीं था। सत्तासीन व्यक्तियों के लिए सम्मान तो राजनीतिक शिष्टाचार और औपचारिकता का अंग होता है। इसका अर्थ यह भी है कि उनके प्रधानमंत्री न रहने पर भी संसार के अन्य देशों में उनकी छवि किसी प्रधानमंत्री से कम नहीं थी। बहुत से लोग तो उन्हें भारत का भावी प्रधानमंत्री मानकर ही चल रहे थे।

राजनीतिक नेताओं के साथ इस प्रकार की त्रासदी असामान्य नहीं है। राजनीति है ही तीव्र राग और तीव्र द्वेष का खेल। पर राजीव गांधी की हत्या केवल इस तीव्रता का परिणाम नहीं है। महात्मा गांधी की हत्या या इन्दिरा गांधी की हत्या जिन लोगों ने की, उनके पीछे एक उद्देश्य था। पर राजीव गांधी की हत्या के पीछे वैसा कोई उद्देश्य नजर नहीं आता। यह केवल उस आतंकवाद के अपरिमित प्रसार का परिणाम है, जिसके रहते आज किसी का जीवन सुरक्षित नहीं है। जिस हिंसक आतंकवाद ने आज हमारे राष्ट्र की नस-नस में ज़हर घोल दिया है, उसके रहते कौन सुरक्षित रह सकता है? स्व० कविवर भवानी प्रसाद मिश्र ने इस आने वाले समय को लक्ष्य करके ही लिखा था—“नहीं, यहां कोई सुरक्षित

नहीं है।" आपतकाल के दौरान ही उन्होंने देश की भावी नियति का अनुमान लगा लिया था।

ऐसा होता भी क्यों न! जब सभी राजनीतिक दल दिन-रात इस विषय को घोलने का काम कर रहे हों, राजनीति का अपराधीकरण कर रहे हों और चुनावी महासमर जीतने के लिए गुण्डों के गिरोह जमा कर रहे हों, तो बबूल के पेड़ बोकर आम के पैदा होने की आशा नहीं की जा सकती। देश का यही सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। यदि सारे राष्ट्रवासी मिलकर इस समस्या का हल नहीं करेंगे, तो इस राष्ट्र के सुखद भविष्य की कोई आशा नहीं की जा सकती।

हम जानते हैं कि जब महात्मा गांधी की हत्या हुई थी, तब भी देश का जन-जन ऊपर से नीचे तक हिल गया था। पर उस समय नेहरू और पटेल जैसे तपे हुए नेता देश के पास विद्यमान थे और उन्होंने देश को संभाल लिया था। जब इन्दिरा गांधी की हत्या हुई तब आगे ऐसे कोई तपे हुए नेता मंच पर नहीं थे, इसलिए सारे देश ने सहानुभूति की लहर में बहते हुए राजीव गांधी को सन् १९८४ के चुनाव में इतने भारी बहुमत से जिताया, जितने की किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। पर उस समय भी राजीव गांधी ने देश को विघटन से बचाने के लिए आनन्दपुर प्रस्ताव और खालिस्तान के विरोध में वोट मांगे थे। अपनी अनुभव-हीनता और राजनीतिक पृष्ठभूमि के अभाव में केवल सहानुभूति की लहर कब तक उनका साथ देती। उन्होंने कांग्रेस को सत्ता के दलालों से मुक्त कराने का वचन दिया था, पर वे स्वयं सत्ता के दलालों के घेरे में ऐसे घिरे कि उन्हें १९८६ के चुनावों में पराजय का मुंह देखना पड़ा। इस बार वे जिस आत्म-विश्वास के साथ चुनाव प्रचार में संलग्न थे, उससे लगता था कि उन्होंने अपनी पुरानी गलतियों से बहुत कुछ सीखा है, और भविष्य में शायद वे गलतियाँ न दोहरायें, और अपने सपनों के अनुसार देश को २१वीं सदी के सुनहरे भविष्य की ओर बढ़ा सकें। पर हिंसक आतंकवाद ने वे सब सपने चकनाचूर कर दिए।

राजीव गांधी ने भले ही पुरानी गलतियों से अब कुछ सीखा हो, पर कांग्रेस संगठन ने कुछ नहीं सीखा। कांग्रेस संगठन अब केवल सत्ता-लोभी लोगों का जमघट बनकर रह गया है, अपने लोक-सेवक रूप को वह सर्वथा भूल गया है। राजीव गांधी की हत्या से उसे एक अवसर मिला है कि वह महात्मा गांधी के आदर्शों के अनुसार कांग्रेस संगठन का कायाकल्प करे, कुर्सी की दौड़ छोड़ कर जन-सेवा का रचनात्मक मोर्चा संभाले और पुनः जनता की आस्था प्राप्त करे। पर अब भी उसका एक बड़ा वर्ग सोनिया गांधी को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाकर सहानुभूति की लहर की पतवार के भरोसे अपनी राजनीति की नैया खेना चाहता है। भा.ज.पा. को छोड़कर शेष राजनीतिक दल तो एक तरह से कांग्रेसी कुनबे की ही औलाद

हैं, जो उससे छिटक-छिटककर भी केवल स्वार्थ के वशीभूत होकर कुर्सी की दौड़ में लिप्त है। उनमें से किसी में कोई दम नहीं है। इसलिए वे कभी मण्डल आयोग के नाम से जाति-युद्ध छेड़कर और कभी इमान से फतवे दिलवाकर हिन्दू-मुस्लिम में दरार पैदा करने को ही अपनी सबसे बड़ी राजनीति समझ रहे हैं। समग्र राष्ट्र के हित की चिन्ता किसी को नहीं है, सब केवल येन-केन-प्रकारेण सत्ता की कुर्सी हथियाने की जोड़तोड़ में लगे हैं।

इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है, जब राष्ट्रपति श्री वेंकटरमण ने राष्ट्रीय सरकार का सुझाव रखा तो भा.ज.पा. को छोड़कर सभी दलों ने इससे इन्कार कर दिया। कारण? कारण केवल एक कि जिनके चिन्तन में कहीं दूर तक भी राष्ट्र का सम्बन्ध नहीं रहा, वे राष्ट्रीय सरकार की बात भी कैसे सोच सकते हैं? वे नहीं जानते कि राष्ट्र रहेगा, तो हम भी रहेंगे, राष्ट्र नहीं रहेगा, तो हम भी नहीं रहेंगे। वे यही समझते हैं कि राष्ट्र हमारे लिए है, हम राष्ट्र के लिए नहीं हैं। उन्होंने कभी दलीय हित और सत्ता प्राप्ति के लिए जोड़-तोड़ करने के सिवाय और कुछ किया ही नहीं। राष्ट्रहित तो तभी सधेगा जब हरेक राजनीतिक दल अपने दलीय स्वार्थ छोड़कर राष्ट्रहित को अपना मुख्य लक्ष्य बनाएगा। पर वह लक्ष्य आज किसी के सामने नहीं है। इसीलिए वे राष्ट्रीय सरकार के नाम से बिदकते हैं।

असलियत यह है कि इस समय देश जितनी विडम्बनाओं में और जैसे संकटों में फँस गया है, उन्हें कोई एक राजनीतिक दल, चाहे उसे सरकार बनाने के लिए पूर्ण बहुमत भी मिल जाए, हल नहीं कर सकता। जब तक सभी राजनीतिक दल मिलकर राष्ट्रहित की दृष्टि से अपने दलीय स्वार्थों को भूलकर उन संकटों का ईमानदारी से हल करने का प्रयास नहीं करेंगे, तब तक देश का भविष्य संकटापन्न ही रहेगा। क्या यह आघात भी क्षणिक उत्तेजना के सिवाय कुछ अधिक रहेगा? यदि राजनीतिक दलों ने इस बर्बर हत्या से इतना सबक भी नहीं सीखा, तो राष्ट्र के जीवन में नया मोड़ लाने का यह अवसर भी व्यर्थ चला जाएगा।

२ जून १९६१



“क्षितीश जी अपनी प्रतिभा, विदग्धता, वक्तृत्व-कला से उस समय के छात्र-वर्ग में अपना विशिष्ट स्थान बना चुके थे। मैंने उनसे सदा लिया है उनका नाम, उनका यश, उनका स्नेह, और अनुज होने के नाते उनका आशीर्वाद। वे ...सदा दाता रहे।”

-सतीश दत्तात्रेय तिवारी

(दैनिक हिन्दुस्तान)

टी-८, ग्रीन पार्क एक्स्टेंशन, नई दिल्ली

## सुभाषित

शरीर का कोई अंग  
भंग उसका भी होता है।  
यदि हो वह असाध्य रूग्ण,  
गये पर एक न रोता है।  
हो कितना ही सुस्वादु भोज  
ज़हर यदि बन जाता है,  
पचकर बनता न देह का अंग  
उगल वापिस आ जाता है।  
एकाकी कोयला भी कभी  
क्या बनता है अंगार?  
सुमन जो माला में न गुँथा  
करेगा किसका श्रृंगार?  
धार लघु चली जो बनने नद  
सूखता है उसका जल—स्रोत।  
लोल लहर सागर की देखो  
बाधित करती जल—पोत।  
एक—एक बिखरा मोती भी  
पत्थर—कण कहलाता है।

गुम्फित होकर एक—सूत्र में  
भण्डी की शोभा पाता है।  
दूट फूल जो गिरा धूल में,  
कुचला ही जाता है  
माला में बंध वही कंठ में  
कैसी छवि पाता है!  
कुल समाज या राष्ट्र धार से  
जो भी कट जायेगा।  
होगा उन्नत कभी नहीं वह  
शतशः बंट जायेगा।  
एक पाठ है देखो  
दुनिया में केवल पढ़ने का।  
संघबद्धता मूल—मंत्र है  
जग में आगे बढ़ने का।

- डा. धर्मचन्द विद्यालंकार  
प्रवक्ता सनातन धर्म महाविद्यालय  
पलवल (हरियाणा)

## राष्ट्रीय एकता-परिषद्

राष्ट्रीय एकता-परिषद् की इतनी जल्दी ही दुबारा बैठक बुलाकर प्रधानमंत्री ने अपने वचन का पालन तो कर दिया, परन्तु उसका परिणाम रस्म-अदायगी से अधिक कुछ नहीं रहा। असली समस्या थी आतंकवाद से निपटने के लिए कोई प्रभावशाली योजना बनाना, परन्तु १२ घंटे की बहस के बाद भी इस विषय पर सब दलों की सहमति से कोई योजना नहीं बन पाई। इस लम्बी बहस का परिणाम यदि कुछ निकला तो केवल इतना ही कि पंजाब में चुनाव करवाने की घोषणा को फिर दुबारा ज़ोर-शोर से दोहरा दिया गया। जब २१ जून को नरसिंह राव की कांग्रेस सरकार ने केन्द्रीय सत्ता संभाली थी, तब उससे एक दिन पहले २० जून को ही शायद कांग्रेसी सरकार की इच्छा भाँपकर, अद्यानक चुनाव आयोग ने चुनाव स्थगित कर दिये थे। इससे खिन्न होकर पंजाब के राज्यपाल ने अपना त्यागपत्र भी दे दिया था, क्योंकि उन्होंने बड़ी मेहनत से सेना और पुलिस के सहयोग



से चुनाव करवाने की पूरी तैयारी कर ली थी। तब से कांग्रेस के प्रति जो अविश्वास पैदा हुआ था, उसको दूर करने के लिए ही अब प्रधानमंत्री ने पंजाब में चुनाव करवाने के अपने दृढ़ निश्चय की पुनः घोषणा करना आवश्यक समझा, जिससे इस बार किसी के मन में कोई संदेह न रहे।

यदि मान भी लिया जाय कि इस बार फरवरी में पंजाब में चुनाव होकर ही रहेंगे, तो भी आतंकवाद की समस्या तो ज्यों की त्यों कायम है। इस आतंकवाद के कायम रहते कितना भयंकर खून-खराबा हो सकता है, इसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। क्योंकि पहली बार चुनाव से पहले आतंकवादियों ने रेल के ७० यात्रियों को अपनी गोलियों से भूनकर जो अपनी पशुता प्रकट की थी, उसको लोग भूले नहीं होंगे। इस बार भी वैसी ही प्रवृत्तियाँ बार-बार बढ़ती हुई नजर आ रही हैं। अब इन प्रवृत्तियों का केन्द्र केवल पंजाब नहीं रहा, बल्कि हरियाणा और उत्तर प्रदेश का तराई इलाका भी उनका केन्द्र बन गये हैं। अब इन आतंकवादी प्रवृत्तियों से राजधानी दिल्ली भी अछूती नहीं रही। यहां भी स्थान-स्थान पर लगातार सार्वजनिक जगहों पर बम-विस्फोट होते रहे हैं। संगरूर और रोपड़ में जिस तरह अंधाधुंध गोलियां चला कर ३० मजदूरों को मार दिया गया और ४० को घायल कर दिया, तथा तराई के इलाके में कई पूरे परिवारों को बिल्कुल नष्ट कर दिया गया, वह पशुता की पराकाष्ठा नहीं तो और क्या है?

आतंकवादियों की इन बढ़ती हिंसक-प्रवृत्तियों का एकमात्र कारण यह है कि पाकिस्तान नहीं चाहता कि पंजाब में किसी तरह लोकतंत्र की स्थापना हो। इस लिए वह आतंकवादियों को अधिक से अधिक उकसाता है और सब तरह के आधुनिक हिंसक हथियार सप्लाई करता है, ताकि पंजाब में किसी तरह शान्ति स्थापित न हो सके। इसलिए इसको 'प्रायोजित आतंकवाद' कहना होगा। पहले हमेशा आतंकवादियों के हाथ में रहती है और पुलिस तथा सुरक्षा-बल बार-बार 'रेड अलर्ट' की घोषणा करके भी अपनी किसी 'अलर्टनेस' का सबूत नहीं दे पाते। ऐसी विषम परिस्थिति में पंजाब में चुनाव हो भी गये तो उसका परिणाम क्या होगा?

इस समस्या का एक और विषम पहलू भी है। वह यह है कि समस्त अकाली दल कभी चुनावों के बायकाट की घोषणा करते हैं और कुछ दल चुनाव में हिस्सा लेने की बात करते देखे जाते हैं। इन अकाली दलों में से कौन सा प्रामाणिक है, यह कोई नहीं जानता। सब के सब अकाली दल आतंकवादियों के आतंक से इतने भयभीत हैं कि उनके विरोध में कोई ज़बान खोलने की हिम्मत नहीं करता। जो भी अकाली दल चुनाव में हिस्सा लेने की बात करने लगता है, तो अन्य अकाली दल उस पर तुरन्त सरकार से सांठ-गांठ का आरोप लगाने लगते हैं। पहले सिमरनजीत सिंह भान पर यह आरोप लगा, तो अब श्रीमान् मान जी, जिन्हें असल

में 'न मैं तेरी मानूं, न तू मेरी माने' की कहावत का पर्याय मानना चाहिये, बादल गुट पर वही आरोप लगा रहे हैं। उमरानांगल जैसे राष्ट्रवादी उदार सिक्ख के प्रति लोगों के मन में कितना ही आदर क्यों न हो, परन्तु उनके पक्ष में बोलने की हिम्मत कोई समझदार सिक्ख नेता नहीं करता। असल में ये सब अकाली दल इतने स्वार्थी, इतने सत्ता-लोलुप और इतने कायर हैं कि अपने प्राणों को संकट में डालने के लिए कोई सही बात कहने को तैयार नहीं होता। यह केवल आज ही की बात नहीं है, सिक्खों के पूरे इतिहास में एक दूसरे के प्रति असहिष्णुता की यह भावना आसानी से देखी जा सकती है।

पंजाब में चुनाव के लिए प्रधानमंत्री ने यह अच्छा सुझाव दिया है कि सब राजनीतिक दल मिलकर अपना एक उम्मीदवार खड़ा करें जिससे आतंकवादियों के और आपस में लड़ते अकाली गुटों के हौसले पस्त किए जा सकें। परन्तु राजनीतिक दलों में यह आपसी सद्भावना होती तो देश की ऐसी दुर्दशा क्यों होती? यह देख कर आश्चर्य होता है कि केवल भाजपा को छोड़कर अन्य किसी राजनीतिक दल ने प्रधानमंत्री की इस बात का समर्थन नहीं किया। इसका भी मूल कारण यही है कि जनता दल तो स्वयं बिखराव के कगार पर है, और भाजपा और माकपा में राष्ट्रीयता की वह धारणा ही नहीं है जो किसी भी देश की धरती से जुड़े राजनीतिक दल में होनी चाहिए। वे अभी तक भारत को एक राष्ट्र मानने की बजाय 'अनेक राष्ट्रों का समुच्चय' कहते चले आये हैं। जब से सोवियत संघ का विघटन हुआ है तब से शायद उनको इस सिद्धांत की पुष्टि में और नया सहारा मिला है। परन्तु वास्तव में तो अंग्रेजों ने ही भारत को 'उप-महाद्वीप' कहने की प्रथा चलाई थी और तभी से हमारे तथाकथित प्रगतिशील बन्धु उसी राग को अलापते चले जा रहे हैं। इसे बुद्धि का व्यामोह न कहें तो और क्या कहें ?

इस बीच में एक बात अवश्य हुई है। वह यह कि ब्रिटेन के गृहमंत्री केनेथ बेकर ने भारत आकर और यहां के नेताओं से मिलकर भारत में व्याप्त आतंकवाद से निपटने के लिए जो पूरी सहायता का आश्वासन दिया है, वह ध्यान देने योग्य है। अभी तक ब्रिटेन, कनाडा और अमेरिका स्थित सिक्ख संगठन ही सिक्ख आतंकवादियों को न केवल धन मुहैया करवाते रहे हैं, बल्कि आतंकवादियों की कारगुजारियों के लिए अपना एक पूरा खास प्रचार-तंत्र भी कायम किए हुए हैं। इस प्रचार-तंत्र में वे मानवाधिकारवादी गुट भी शामिल हैं, जो कश्मीर और पंजाब में मानवधिकारों के हनन का अनाप-शनाप मिथ्या शोर मचाते रहते हैं।

प्रश्न यह है कि पशुता के निम्नतम स्तर तक उतर आने वाले और दानवता के कारनामे करके मानवता को कलंकित करने वाले आतंकवादियों के भी क्या कभी कोई मानवीय अधिकार मान्य हो सकते हैं? उनके तो समस्त मानवीय अधिकार छीने

जाते हैं। इसीलिए बेकर ने सुझाव दिया है कि आतंकवादियों और उनके परिवारों की सम्पत्ति ज़ब्त की जाय, और आतंकवादियों से सख्ती से निपटा जाय। यही तो राजनीति का तकाजा है। आश्चर्य है कि भारत सरकार ने स्वयं अभी तक इस बात पर अमल क्यों नहीं किया! दूसरी ओर भारत सरकार राष्ट्रीय स्तर पर उग्रवादियों को उनकी गलतियों का अहसास कराने में जिस तरह असफल रही है, उसी तरह वह विश्व-जनमत को भी अपनी आतंकवाद-विरोधी कार्रवाई का समर्थक बनाने में सफल नहीं रही। यदि आज ब्रिटेन आतंकवाद के विरोध में इतनी गंभीरता दिखा रहा है, तो इसका कारण यह है कि स्वयं भी वह अपने देश में आतंकवाद की बढ़ती प्रखरता अनुभव करने लगा है। ब्रिटेन भले ही आयरिश आतंकवादियों से निपटने में सफल रहा हो, किन्तु अंध-धार्मिकता से उत्पन्न आतंकवाद को लेकर वह स्वयं भी कम परेशान नहीं है। वह अच्छी तरह जानता है कि सिख और मुस्लिम आतंकवाद को प्रश्रय देने का क्या दुष्परिणाम हो सकता है। सलमान रश्दी कांड तो स्वयं ब्रिटेन के लिए भी एक चेतावनी का कारण बना है। अब ब्रिटेन भारत के साथ आतंकवादियों के प्रत्यावर्तन की संधि करने को भी तैयार है।

इसके अलावा अमेरिका ने भी अब आतंकवाद की निन्दा करना शुरू किया है, और पाकिस्तान को इस विषय में चेतावनी भी दी है। पाकिस्तान में ऐसे ८० अड्डे हैं, जहां आतंकवादियों को प्रशिक्षण दिया जाता है और पाकिस्तान सरकार बारम्बार यह घोषणा करती है कि हम कश्मीर के आतंकवादियों को समर्थन देना बन्द नहीं करेंगे, तो इसका अर्थ क्या होता है? असल में तो राष्ट्रीय एकता परिषद् में इस विषय पर गम्भीरता से विचार होना चाहिए था। सरकार को अपनी नीति स्पष्ट करनी चाहिए थी और उस पर सब राजनीतिक दलों की स्वीकृति प्राप्त करनी चाहिए थी। पर हमारी सरकार अभी तक इस विषय में डावांड़ोल हैं। इसलिए आतंकवाद भी दिनों-दिन बढ़ती पर है।

१६ जनवरी १९६२



‘पण्डित जी के विषय में कवि केदारनाथ ‘कोमल’ ने कहा— ‘बड़े सहृदय और मिलनसार हैं। विद्वत्ता में उनकी कोटि के विद्वान् विरले ही मिलेंगे। वैदिक वाङ्मय के पण्डित हैं।’... उन्हें मैं ‘भ्राता’ शब्द से सम्बोधित करता आया हूँ। भ्राता जी का एक और रूप मुझे उनके निकट लेता गया। वह है उनका वनवासी समाजों के प्रति प्रेम, और एक नृ-वैज्ञानिक की भांति शोध का मन।’

-पद्मश्री, डॉ० श्यामसिंह ‘शशी’

बी-४/२४५, सफ़्दरजंग ऐन्क्लेव, नई दिल्ली

## सुभाषित

प्रारम्भ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,  
प्रारम्भ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।  
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,  
प्रारम्भ्य तूत्तमजना न परित्यजन्ति॥

- भर्तृहरि

अधम कोटि के व्यक्ति विघ्नों के भय से कोई काम प्रारम्भ ही नहीं करते। जो मध्यम कोटि के व्यक्ति होते हैं, वे काम को प्रारम्भ तो कर देते हैं, किन्तु विघ्नों के उपस्थित होने पर उसे बीच में ही छोड़ देते हैं। पर उत्तम कोटि के व्यक्ति एक बार कार्य प्रारम्भ कर देने पर विघ्नों से बार-बार प्रताड़ित होने पर भी कार्य को पूरा करके ही छोड़ते हैं।

## एकता-यात्रा: कोई तो निकला !

दस दिसम्बर को गुरु गोविन्दसिंह के जन्म दिवस पर कन्याकुमारी से प्रारम्भ हुई भाजपा की एकता-यात्रा पैंतालीस दिन के बाद कश्मीर में २६ जनवरी को सकुशल समाप्त हो गई, यह देखकर सभी देशवासियों ने राहत की सांस ली होगी। यद्यपि जब यह एकता-यात्रा प्रारम्भ हुई थी, तब अनेक प्रकार की शंकाएं प्रकट की गई थीं और यह भी कहा गया था कि इस साम्प्रदायिक उन्माद से देश भर में उपद्रवों का सिलसिला प्रारम्भ हो जाएगा और सारा वातावरण दूषित हो जाएगा। पर ऐसा नहीं हुआ। केवल केरल के पालाघाट में छोटा-मोटा उत्पात हुआ, और वह भी एकता-यात्रा गुजर जाने के दो दिन बाद। वह भी पूर्वयोजित था। शेष सब स्थानों पर न केवल शान्ति रही, प्रत्युत जनता ने भारी उत्साह से इस एकता-यात्रा का स्वागत किया। भाजपा का गढ़ समझे जाने वाले हिन्दी प्रदेशों में तो इस यात्रा का स्वागत होना ही था, किन्तु दक्षिण भारत के तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और केरल में भी जिस प्रकार इस एकता-यात्रा के स्वागत के लिए जन-समूह उमड़ पड़ा, वह दिग्गज राजनीतिज्ञों को भी चौंकाने वाला था।

इस एकता-यात्रा की सकुशल समाप्ति के लिए जहाँ भारतीय जनता पार्टी के नेताओं को साधुवाद देना होगा, वहाँ नरसिंह राव के प्रधानमन्त्रित्व में केन्द्रीय सरकार के रुख को भी साधुवाद देना होगा। सबसे पहले तो प्रधानमन्त्री को हम इस बात के लिए धन्यवाद देंगे कि उन्होंने यात्रा के शुरू में ही यह सुझाव दिया

था कि यह यात्रा किसी एक राजनीतिक दल की ओर से न होकर सर्वदलीय होनी चाहिए थी। इसका अर्थ यह है कि प्रधानमन्त्री स्वयं इस प्रकार की एकता-यात्रा की सार्थकता अनुभव करते थे। इसके उत्तर में भाजपा नेताओं का यह उत्तर ठीक ही था कि हमने यात्रा प्रारम्भ कर दी है, अब जो भी राजनीतिक दल इसमें सहयोग देना चाहें, वे दे सकते हैं। पर अन्य राजनीतिक दल सहयोग देना ही कहाँ चाहते थे? वे तो भाजपा को 'अछूत' समझते हैं और सब मिलकर भाजपा के विरोध में एक संगठित मोर्चा बनाने की जोड़-तोड़ करते रहते हैं। वे अगर शामिल भी होते, तो सहयोग के लिए नहीं बल्कि अन्दर से विध्वंस के लिए। उन्हें तो भाजपा को 'देशद्रोही' पार्टी कहने में भी संकोच नहीं होता। ऐसे स्वयंभू 'देश-भक्त' भाजपा जैसी 'देशद्रोही' संस्था की ओर से आयोजित इस एकता-यात्रा में शामिल कैसे हो सकते थे? इससे उनकी 'देश-भक्ति' कलंकित न हो जाती!

तब उन्हीं 'देशभक्तों' ने अपनी ओर से यह आन्दोलन करने में कसर नहीं छोड़ी कि सरकार को इस यात्रा पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए, पर श्री नरसिंह राव ने यहां भी समझदारी दिखाई और उन्होंने यह कह कर उनका मुंह बन्द कर दिया कि एकता-यात्रा पर प्रतिबन्ध लगाकर हम भाजपा को उसका राजनीतिक लाभ नहीं उठाने देना चाहते। तब इन 'देशभक्तों' ने गुहार लगाई कि भाजपा और केन्द्रीय सरकार में आन्तरिक गठजोड़ हो गया है। इसकी काट के लिए प्रधानमन्त्री ने दूरदर्शन पर इस एकता-यात्रा के दृश्यों का प्रदर्शन वर्जित कर दिया। और हमारा दूरदर्शन! वह तो बस दूर से ही दर्शन के लिए ठीक है, पास से देखने पर तो दर्शकों की आंखों की ज्योति ही मन्द होती है। सरकार के छोटे से छोटे समारोहों पर तो उसके कैमरे की आंख पहुंच जाती है, पर केसरिया-वाहिनी के हजारों-लाखों लोगों को अपने साथ समेटने वाली यह देशव्यापी घटना उसकी आंखों से अन्तिम दिन तक ओझल ही रही। अच्छा ही हुआ! इससे दूरदर्शन ने अपना नाम सार्थक करते हुए 'दिये तले अंधेरे' की कहावत को ही चरितार्थ किया। उसे आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के क्रिकेट मैच तो यहां बैठे-बैठे भी दिख जाते हैं, वे दूर थोड़े ही हैं, उसके लिए तो अपना देश ही 'दूर' पड़ता है। इसलिए दूरदर्शन पर अंग्रेजी के कार्यक्रमों की भरमार देखकर सामान्य भारतवासी तो कभी-कभी इस भ्रम में पड़ जाता है कि यह अपने देश का है या किसी परदेश का! हमारा दूरदर्शन तो साक्षात् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को चरितार्थ करने वाला है, जिसके लिए सारी वसुधा ही कुटुम्ब हो, उसे अपने कुटुम्ब से क्या वास्ता!

अब जब एकता-यात्रा सकुशल समाप्त हो गई तो रक्षामन्त्री से लेकर अनेक अन्य छुट्टाईयों और बड़े भइयों के ये वक्तव्य आने लगे कि इस एकता-यात्रा से कश्मीर की समस्या अब और अधिक उलझ गई है। अब सारे आतंकवादी, जिन्हें समाप्त

करने की कार्रवाई में सरकार को सफलता मिलती जा रही थी, वे सब मिलकर एकजुट हो जाएंगे। इन आतंकवादियों में जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रंट के नेता कश्मीर की स्वायत्तता के पक्ष में हैं और हिजबुल मुजाहिदीन कश्मीर को पाकिस्तान में मिलाने के पक्ष में हैं। इन दोनों में फूट पड़ गई थी और उनकी आपस में कई मुठभेड़ें भी हो चुकी हैं। अब ये दोनों प्रमुख धड़े भी मिलकर आपस में एक हो जाएंगे और उग्रवाद की कार्रवाइयां और भंयकर रूप में प्रारम्भ हो जाएंगी। रक्षामन्त्री तथा अन्य ऐसे ही लोगों के ये बयान जितने भ्रामक हैं, उतने ही स्वयं सरकार की असमर्थता के भी द्योतक हैं। सच तो यह है कि कश्मीर के सम्बन्ध में सरकार की कोई दृढ़ संकल्पबद्ध नीति नहीं है। वह हर कदम पर सर्वदलीय सहयोग की तो बात करती है, पर उससे पहले अपनी कोई नीति निर्धारित नहीं करती। आखिर सरकार आप चलाते हैं, नीति तो आपको स्वयं निर्धारित करनी होगी। तभी तो आप उस नीति पर औरों के सहयोग की कामना कर सकते हैं। जब आपकी ही कोई नीति नहीं, तो सहयोग किस बात पर? क्या सरकार की नीति अन्य राजनीतिक दल बना कर देंगे? और कौन से राजनीतिक दल - क्या वे, जिनका स्वयं अपना अस्तित्व खटाई में है? या वे राजनीतिक दल जिनको आपस में एक-दूसरे की टाँग खींचने से फुरसत नहीं है? क्या वे राजनीतिक दल जिनके मन में देश और राष्ट्र के प्रति कोई सही अवधारणा तक नहीं है और केवल जोड़-तोड़ करके किसी न किसी प्रकार कुर्सी हथियाने की तिकड़म भिड़ाना ही जिनकी सबसे बड़ी राजनीति है? जो राजनीतिक दल अपराधकर्मियों और गुण्डों की बदीलत राजनीति में पैर जमाये हुए हैं, उनसे आप क्या आशा कर सकते हैं?

सही बात यह है कि कश्मीरी आम जनता आतंकवादी नहीं है, न वह आतंकवादियों के साथ है। जनता तो बिचारी लाचार है। वह तो स्वयं आतंकवादियों से त्रस्त है। उसे अपनी जान बचाने के लिए मजबूरी में उनका साथ देना पड़ता है। ये आतंकवादी अधिकतर पाकिस्तानी सैनिक हैं, जिन्हें छापामार युद्ध का प्रशिक्षण देकर पाकिस्तान ने कश्मीर में धकेला है। स्वयं सरकार स्वीकार कर चुकी है कि चार हज़ार पाकिस्तानी सैनिक कश्मीर घाटी में घुस चुके हैं। उनके पास समस्त आधुनिक हथियार हैं। पाकिस्तान एक छद्म-युद्ध कश्मीर में लड़ रहा है। इसलिए ये पाक-सैनिक सुरक्षा-बलों पर राकेटों और लांचरों से सीधा हमला करते हैं। पाकिस्तान में इनके ८० प्रशिक्षण-केन्द्र हैं, जिनका सब ब्यौरा सरकार के पास है। पर सरकार का प्रचार-तंत्र इतना कमजोर है कि न तो वह देशवासियों को सही स्थिति बताती है, न ही दुनिया के अन्य देशों को। पाकिस्तान सरकार खुल्लम-खुल्ला हर बार कहती है कि हम कश्मीरियों को सहायता देना बन्द नहीं करेंगे। यह सहायता नहीं है, सीधा युद्ध है जो इन प्रशिक्षित सैनिकों के माध्यम

से स्वयं पाकिस्तान सरकार के नियंत्रण में चल रहा है। हमारे रक्षामन्त्री और प्रधान मन्त्री कभी-कभी अपने बयानों में यह संकेत जरूर देते हैं कि पाकिस्तान इन आतंकवादियों को शस्त्रास्त्र सप्लाई कर रहा है, पर निर्भीकता से कभी दो टूक बात नहीं कहते।

उधर सुरक्षा-बलों के हाथ सरकार ने इस तरह बांधे हुए हैं कि यदि कभी आतंकवादियों के जवाब में गोली चलाने पर किसी नागरिक को गोली लग जाती है, तो उनसे जवाब-तलब किया जाता है और उन्हें बर्खास्त तक कर दिया जाता है। क्या पाकिस्तान के इस छद्म-युद्ध का इस तरह मुकाबला किया जा सकता है? तभी बीच में आ कूदते हैं हमारे महामनीषी मानवाधिकारवादी नेतागण। कोई इनसे पूछे कि क्या कभी आतंकवादियों और आतंकवादियों के भी कोई मानवाधिकार होते हैं? जो मानवता के नाम पर दानवों से भी बढ़कर जघन्य आचरण करते हैं, उनके कैसे मानवाधिकार? उनके तो सब मानवाधिकार छीने जाते हैं। आश्चर्य की बात है कि ब्रिटेन के विदेशमन्त्री तो यहां आकर यह सुझाव देते हैं कि आतंकवादियों की और उनके परिवारों की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली जाए और उनके साथ पूरी सख्ती से निपटा जाए। पर हमारी रहम-दिल सरकार कभी इस तरह की बात सोच भी नहीं सकती। वह तो बार-बार उनसे समझौता-वार्ता करने की घोषणा करती है, पर वे बात क्यों करेंगे?

इस एकता-यात्रा से और चाहे कुछ हुआ हो, या न हुआ हो, पर सारे देश को और सारे संसार को कश्मीर की आन्तरिक स्थिति का सही ज्ञान हो गया। इसके लिए देश में जो भी लाखों लोग केसरिया-वाहिनी के सदस्य बने, उनमें भी कश्मीर की रक्षा के लिए मर-मिटने की तमन्ना तो जागृत हुई। यदि केसरिया-वाहिनी के ५० हजार से एक लाख तक लोग कश्मीर जाने के लिए जम्मू में एकत्र हो गये, तो यह कोई कम चमत्कार नहीं था। यह बोट-क्लब पर आये दिन होने वाली रैलियों जैसी नहीं थी - जिसमें बसों में भर-भर कर दिहाड़ी पर लोग लाये जाते हैं। ये वे देशभक्त थे, जो देश के सभी राज्यों से अपनी गांठ का पैसा खर्च करके इतनी बड़ी संख्या में आये थे। देश में आज इसी बलिदानी भावना को जगाने की जरूरत है। यही देश को विघटन से बचाने का एकमात्र उपाय है। एकता-यात्रा का यही उद्देश्य था। इस प्रकार की एकता-यात्रा के लिए कोई तो आगे आया। इससे कश्मीर की समस्या उलझी नहीं, उसे सुलझाने के लिए और सरकार का मनोबल बढ़ाने के लिए यह संजीवनी-रसायन सिद्ध होगी, ऐसा हमें विश्वास है। इसे राजनीतिक पैतरेबाजी के मापदण्डों से मत मापो, इसे देश के भविष्य की दृष्टि से सोचकर देखो, तब असलियत को पहचान पाओगे।

## सुभाषित

वने रणे शत्रु-जलाग्निमध्ये  
महार्णवे पर्वतमस्तके वा।  
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा  
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि।

- नीतिशतक

वन में, युद्ध में, शत्रुओं के बीच में, या बाढ़ या अग्निकांड से घिर जाने पर, अथाह सागर में अथवा पर्वत के शिखर पर यदि कोई व्यक्ति निद्राधीन हो जाए या उन्माद में पड़ जाए अथवा किसी विषम स्थिति में फंस जाए, तो उसके पहले किये हुए पुण्य कर्म ही उसकी रक्षा करते हैं।

## भाजपा की रणनीति

जिस प्रकार पहले छोटी से छोटी बात के लिए भी राजनीति शब्द का प्रयोग होता था, उसी तरह अब उसी स्थान पर रणनीति शब्द का प्रयोग होने लगा है; क्योंकि आजकल राजनीति में नैतिकता का तो कोई स्थान है नहीं, पर उसे रण-कौशल में अवश्य बदल दिया गया है। आमतौर से अखबार वाले प्रत्येक घटना में विभिन्न राजनीतिक दलों की कारगुजारी का विश्लेषण उनकी रणनीति के रूप में ही करने का प्रयत्न करते हैं। इस विश्लेषण में वे यही दर्शाने का प्रयत्न करते हैं कि किसी राजनीतिक दल ने अमुक-अमुक राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए अमुक कारगुजारी की है। इसमें उनको किसी भी सद्भावना-परक राष्ट्रहित की बात दिखाई नहीं देती।

भाजपा के अध्यक्ष श्री मुरली मनोहर जोशी की एकता-यात्रा को भी उन्होंने इसी दृष्टि से देखा है, और तरह-तरह से उसके विपरीत समीक्षाएं की हैं। अधिकांश जिम्मेवार इकाई नेताओं ने तो उसे देश को जोड़ने के बजाय देश को तोड़ने वाली घटना बताया था। दूरदर्शन ने तो उसका बाकायदा प्रायोजित ढंग से पूर्ण बहिष्कार किया ही, किन्तु अधिकांश पत्रकारों ने भी तरह-तरह से उसका अवमूल्यन करने का प्रयत्न किया।

धर्म-निरपेक्षता और राष्ट्र की अवधारणा के सम्बन्ध में जो एक बौद्धिक व्यामोह हमारे बुद्धिजीवियों में व्याप्त है, वह असल में अंग्रेजों द्वारा उपजाई गई मानसिकता



का ही परिणाम है! आधुनिक कांग्रेसी नेताओं ने भी यह मानसिकता अंग्रेजों से विरासत में पाई है। एक धर्म के लोगों को एक अलग कौम मान लें और फिर उसे राष्ट्र का दर्जा देने का पुण्य विचार हमें अंग्रेजों ने दिया और अपने उपनिवेशी साम्राज्य को बनाने के लिए उन्होंने उसका भरपूर प्रयोग किया। सांप्रदायिकता को राजकाज से अलग रखने वाले भारतीय अंग्रेजों को पसन्द नहीं थे। वे सदा कांग्रेस को हिन्दू और लीग को मुस्लिम बनाये रखना चाहते थे और इन्हीं पार्टियों को इन समाजों का सच्चा प्रतिनिधि मानते थे। चिरकाल से अनेक सम्प्रदायों को जन्म देने और उनके सह-अस्तित्व को सहज-सम्भव बनाने वाली भारतीय मनीषा को न अंग्रेजों ने समझा, और न अंग्रेजी पढ़े-लिखे हमारे विद्वानों, विचारकों और राजनीतिज्ञों ने। भारत का यह पश्चिमी दिमाग कभी धर्म-निरपेक्षता का सहारा लेता रहा, और कभी मार्क्स की धर्म-विरोधिता का। आज भी मंच पर भले कोई भी कठपुतली नाच रही हो, मगर उसकी डोर इसी दिमाग के हाथ में रहती है।

और तो और शाही इमाम अब्दुल्ला बुखारी ने तो यहां तक कह डाला — “यह मात्र देश के मुसलमानों का कत्लेआम करने की तैयारी है।” असल में देश के जितने विघटनकारी और विभाजक तत्त्व हैं, वे इस बात से परेशान हैं कि यह यात्रा उनके पुराने पापों को प्रकट कर देगी। ये चतुर लोग यह भी जानते हैं कि यदि सारा देश कन्याकुमारी से कश्मीर तक और द्वारिका से मणिपुर तक किसी तरह एकता के सूत्र में जुड़ गया तो देश में उनको नहीं कोई पूछेगा। वे बार-बार यह तो कहते हैं कि कश्मीर हमारी राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है, परन्तु उसी कश्मीर की इस समय कैसी भयंकर दुर्गति हो गई है, इसको वे देश की जनता के सामने खुलकर कहना नहीं चाहते। वे भूल जाते हैं कि इस समय कश्मीर के लगभग डेढ़ लाख कश्मीरी पंडित कश्मीर से विस्थापित कर दिये गये हैं और सरकार की ओर से उनको वापिस अपने घरों में पहुंचाने की और पूर्ण सुरक्षा देने की कोई हिम्मत नहीं रह गई है। वे भूल गये कि कश्मीर में व्याप्त और पाकिस्तान की शह पर पनपने वाला मुस्लिम आतंकवाद इतना उग्र रूप धारण कर चुका है कि उसने कश्मीरी औरतों के स्तनों और जांघों पर “पाकिस्तान जिन्दाबाद” लिखकर उन्हें भारत की राष्ट्रीय एकता का सारे देश में मखौल बना कर घूमने के लिए लाचार कर दिया है। वह यह भी भूल जाते हैं कि कश्मीर में तिरंगा नहीं, पाकिस्तानी झंडा लहराया जाता है। जो कुछ हिन्दू वहां रह भी गये हैं, उनके घरों पर अपनी जवान लड़कियों, बहुओं सहित सब जमीन-जायदाद छोड़कर वहां से भाग जाने की चेतावनियां संगीनों से लिख दी गई हैं। इस दुर्दशा के ऐतिहासिक चित्रों और दस्तावेजों को भी झुठला दिया गया है। अब कश्मीर में अनंतनाग को अनंतनाग

नहीं कहा जा सकता। इस्लामी कट्टर-पंथियों ने उसका नाम बदल कर इस्लामाबाद घोषित कर दिया है और सैकड़ों मन्दिरों को तोड़ दिया गया है।

कुछ राजनीतिज्ञों ने भाजपा की इस यात्रा को कश्मीर पर हमले का नाम दिया है। क्या जब ऋषि दयानन्द ने कश्मीर से कन्याकुमारी तक सारे देश को एकता के सूत्र में आबद्ध करने का स्वप्न देखा था, तो वह कश्मीर पर हमला था? क्या शंकराचार्य ने केरल से कश्मीर तक यात्रा करके कश्मीर पर हमला किया था? आज भी प्रतिवर्ष हजारों भारतीय यदि बद्रीनाथ, केदारनाथ और अमरनाथ का दर्शन करने जाते हैं, तो क्या वे वहां हमला करने जाते हैं? क्या गांधी ने दांडी-मार्च करके भारत को तोड़ा था? क्या अपनी मां का चीर-हरण रोकने के लिए उसके बेटों के मन में तड़प और उत्तेजना उठती है, तो क्या वह मां पर हमला करना होता है।

मुरली मनोहर जोशी की यह एकता-यात्रा २६ जनवरी को गणराज्य दिवस के दिन कश्मीर के लाल चौक में तिरंगा झंडा लहराकर बिना किसी दुर्घटना के सकुशल समाप्त हो गई। उसने उन सब भविष्यवक्ताओं और राजनीति को रणनीति के रूप में देखने वालों को चौंका अवश्य दिया, और अन्त में खीझ कर यह आरोप लगाने से वे बाज़ नहीं आये कि आखिर तो सरकार और सेना के सहयोग से ही यह एकता-यात्रा सकुशल समाप्त हो सकी। जहां इस पर केन्द्रीय सरकार को और सेना को उनकी समझदारी पर साधुवाद मिलना चाहिए, वहां उनको भला-बुरा कहने पर भी एकता-यात्रा के विरोध में पूर्वाग्रह ही काम करता है।

इस यात्रा के लिए जो हजारों लोग देश के दूरस्थ प्रदेशों से भी जम्मू पहुंचे थे, वे बोट क्लब पर होने वाली राजनीतिक-दलों की विभिन्न रैलियों के लिए दिहाड़ी पर जुटाई भीड़ नहीं थी। वे सब केसरिया-वाहिनी के सदस्य थे जो बिना किसी प्रलोभन के देश की एकता के लिए अपने प्राण तक कुर्बान करने को तैयार होकर आये थे। यह कोई सामान्य जनजागरण नहीं था। यदि ये सब लोग ज़बरदस्ती कश्मीर जाने की जिद पकड़ लेते, तो सरकार के लिए भी उनकी सुरक्षा की कठिन समस्या पैदा हो जाती। परन्तु अपने नेताओं के आग्रह पर अन्त में केवल थोड़े से लोगों को ही कश्मीर पहुंचने की सलाह मानकर उन्होंने अद्भुत संयम और अनुशासन का परिचय दिया। २६ जनवरी को ज़बरदस्त हिमपात और भूस्खलन के कारण बनिहाल और रामबन के पास सड़क यातायात अवरुद्ध हो गया था, उसके कारण उनका उसी दिन कश्मीर पहुंचना सम्भव भी नहीं था। फिर भी लगातार दो दिन तक १५०० यात्री उस भंयकर सर्दी में भी, जहां खाने को तो क्या चाय का प्याला तक नसीब नहीं था, ठिठुरते हुए ही बसों में बन्द रहे, और तीसरे दिन सड़क साफ होने तक भूखे-प्यासे और दुर्दशाग्रस्त हालत में वापिस जम्मू पहुंचे।

यह कष्ट—सहना भी क्या उनके दृढ़ निश्चय का सूचक नहीं है? किसी और राजनीतिक दल में ऐसा होता तो यात्री बिना विद्रोह किये नहीं रहते।

जहां तक भाजपा की रणनीति का प्रश्न है, हम यह कहना चाहेंगे कि जिस तरह जनवरी से एक दिन पहले आतंकवादियों ने पुलिस—मुख्यालय पर राकेटों से हमला किया था और पांच मुख्य अधिकारी भंगकर रूप से घायल हो गये थे, एवं जिस तरह लाल चौक पर बारम्बार बम फेंके जा रहे थे, उससे आतंकवादियों ने अपना यह इरादा स्पष्ट कर दिया था कि वे जोशी को ज़िन्दा वापिस जाने नहीं देंगे। इसलिए रात को जोशी कहां ठहरे थे, यह सेना ने किसी को पता लगाने नहीं दिया। फिर भी आतंकवादियों ने कश्मीर से वापिस आते हुए उनके विमान पर गोलियां दागना नहीं छोड़ा। ऐसी हालत में श्री जोशी घूरे खतरे को समझते हुए आडवाणी और वाजपेयी जैसे शिखर—नेताओं को जान-बूझकर जम्मू छोड़ गए थे। सब नेता यदि एक साथ मारे जाते तो भाजपा में नेतृत्व का संकट उपस्थित हो जाता। इसके अलावा ४० स्वयंसेवक कमांडों एक दिन पहले ही होटलों में जाकर ठहर गये थे, ताकि यदि जोशी जी तिरंगा फहराने से पहले शहीद हो जाएं, तो भी वे ४० कमांडों अपनी कमर में तिरंगा बांधकर लाल चौक की ओर दौड़ पड़ते और गोलियों की बौछार के खतरे को झेलते हुए भी वहां कोई न कोई पहुंच ही जाता और तिरंगा फहरा कर छोड़ता।

भाजपा की इस रणनीति के पीछे कितना बुद्धि—कौशल और देश पर मर मिटने की तमन्ना विद्यमान थी, यह स्पष्ट पता लगता है। यह कोई दिखावटी प्रदर्शन नहीं था, बल्कि अपने प्राणों की बाजी लगाकर देश की एकता की रक्षा के लिए दृढ़—संकल्प का परिचायक था। आज देश को एक रखने के लिए इसी बलिदानी भावना की आवश्यकता है, जिसकी कल्पना अन्य सत्ता—लोलुप, स्वार्थ—परायण राजनीतिक दल स्वप्न में भी नहीं कर सकते।

१६ फरवरी १९६२



एक भ्रम यह भी फैला हुआ है कि पं० नेहरू और शेख अब्दुल्ला के कारण ही कश्मीर का भारत में अधिमिलन हो सका। वस्तुस्थिति यह है कि श्री मेहरचन्द महाजन और कश्मीर—नरेश महाराज हरिसिंह ही इस विलय के मुख्य घटक हैं। पं० नेहरू ने उक्त दोनों व्यक्तियों से वितृष्णा के कारण ही इनके योगदान का अवमूल्यन किया और शेख अब्दुल्ला का अधिमूल्यन किया। यदि श्री महाजन लाखों कश्मीरियों को कत्लेआम से बचाने के लिए पाकिस्तान के समक्ष आत्मसमर्पण की धमकी न देते, तो पं० नेहरू और 'पं०' माउण्टबेटन अड़ंगा लगाने से बाज़ न आते।

—'कश्मीर झुलसता स्वर्ग', पूर्वकथन

